55

स्मरणाञ्जलि



श्री गुरुजी जन्मशताब्दी समारोह समिति

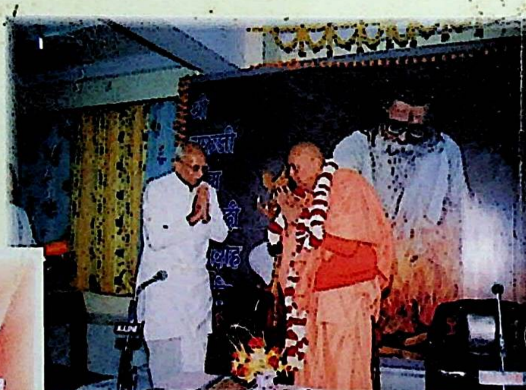


दीप प्रज्ज्वलन करते हुए पूज्य सरसंघचालक श्री सुदर्शन जी



मा. श्री सुदर्शन जी
पूज्यपाद स्वामी सत्यमित्रानंद जी
डा. बजरंग लाल गुप्त





नवनिर्वाचित अध्यक्ष
पूज्यपाद स्वामी सत्यमित्रानंद जी
का अभिनन्दन करते हुए मा. श्री सुदर्शन जी



जन्मशताब्दी समारोह समिति
के कार्यक्रमों की प्रस्तावना रखते हुए
सचिव डा. बजरंग लाल गुप्त



कार्यक्रमों के सुझाव सत्र में बोलते हुए
नेपाल से आए प्रतिनिधि
श्री मनवीर सिंह पंथी

स्मरणाञ्जलि

श्री गुरुजी जन्मशताब्दी समारोह के
शुभारंभ के अवसर पर प्रकाशित
विजया एकादशी युगाब्द ५१०७
(२४ फरवरी २००६)

श्री गुरुजी जन्मशताब्दी समारोह समिति
केन्द्रीय कार्यालय
केशव कुंज, देशबन्धु गुप्ता मार्ग, झण्डेवाला, नई दिल्ली-११००५५
E-mail : gurujijanmashatabdi@rediffmail.com

सम्पादक

अधीश कुमार

प्रकाशक

श्री गुरुजी जन्मशताब्दी समारोह समिति

केन्द्रीय कार्यालय

केशव कुंज, झण्डेवालान, नई दिल्ली-११००५५

ई-मेल : gurujijanmashatabadi@rediffmail.com

वेबसाइट : www.sriguruji.org

मुद्रक

अक्षय कम्प्युटर्स

गो.से.महाविद्यालय के सामने, गोरेपेठ, नागपुर

ई-मेल : aapendse@rediffmail.com

प्रकाशन तिथि : विजया एकादशी युगाब्द 5107 (24 फरवरी 2006)



विजया एकादशी युगाब्द 5107 (24 फरवरी 2006)

स्मरणाञ्जलि

अनुक्रम





समन्वय सेवा ट्रस्ट
समन्वय कुटीर, सत्य सरोवर, हरिद्वार-249410 (उत्तरांचल) भारत

SAMANVAYA SEVA TRUST
Samanvaya Kutir, Sapta Sarowar,
Haridwar - 249 410 (Uttaranchal) India
Telephone : (O) 0133-460256 Fax : 460981
Bharat Sadan : 0133-460111 Fax : 460010
E-mail : samanvayst_ywr@sancharnet.in
Website : www.bharatmatamandir.com

संस्थापक :
स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि
निवृत्त जगद्गुरु, शंकराचार्य, जयोतिर्मठ शाखा



स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि

परमपूजनीय श्री गुरुजी का व्यक्तित्व वटवृक्ष सदृश था। उसकी सुखद छाया में तृण भी महान पादप बन गए। ऐसे महान तपस्वी इस धराधाम पर सदियों पश्चात् प्रगट होते हैं। उनकी पवित्र सन्निधि में अनेक बार मुझे आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हुईं हैं, जो शब्दातीत हैं।

भविष्य में घटने वाली घटनाओं का उन्हें पूर्वस्फुरण हो जाता था। मा. दादासाहब आप्टे के साथ मुझे उनकी अस्वस्थता के दिनों में नागपुर जाने का अवसर 1972 में मिला। सहजभाव से उन्होंने कहा कि कुछ वर्षों पश्चात संघ पर पुनः प्रतिबंध लगेगा। आचार्य स्वामी! तब तक आप सबको विशेष पुरुषार्थ करके हिन्दू संगठन को सुदृढ़ करने का महत्प्रयत्न करना चाहिए। उनके सात्विक संकल्प से धर्मसंसद के वृहद् आयोजन हुए। उनकी दीर्घदृष्टि का यह प्रमाण है।

किसी के प्रति द्वेष न रखकर स्वकार्य के विस्तार का सतत पुरुषार्थ उनके जीवन का मंत्र था। नित्य चर्या में प्रतिदिन संध्योपासन एवं भगवदाराधन में पूज्य गुरुजी नियमित थे। वे कहते थे प्रत्येक प्रचारक को समाजकार्य के साथ उपासना अवश्य करनी चाहिए। उपासना से ऊर्जा प्राप्त होती है।

संतों के प्रति उनका श्रद्धाभाव अनुकरणीय था।

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" के श्री गुरुजी अनुपम उदाहरण थे। उनका प्रत्येक क्षण हमारे लिए प्रेरक एवं शक्ति प्रदाता था। उनका स्मरण आज भी आन्तरिक आध्यात्मिक बल प्रदान करता है। उन्हें मेरे शत-शत प्रणाम।

स्वामी सत्यामित्रानंद गिरि



श्री श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य महासंस्थानम्, दक्षिणाम्नाय, श्री शारदापीठम् , शृङ्गेरी

Sri Sri Jagadguru Shankaracharya Mahasamstanam
Dakshinamnaya, Sri Sharada Peetam, Sringeri.

V.R. GOWRI SHANKAR, BE, DIISC, MIMA,
Administrator
Sri Sringeri Math and its Properties Sringeri - 577 139 (Karnataka - India)

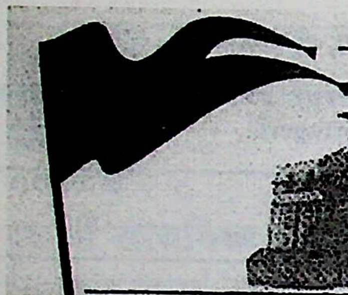
Ref:	*Camp:*	*Date:*
एस् – 18	शृंगेरी	17–2–06

आशीर्वादसन्देशः

राष्ट्रियस्वयंसेवकसङ्घस्य द्वितीयसरसङ्घचालकस्य श्रीमाधवसदाशिवगोलवलकरस्य (श्रीगुरुजीः) जन्मशताब्दकार्यक्रमः पार्थिवसंवत्सरस्य माघबहुल–एकादश्यां (24–2–2006 तमे दिनाङ्के) सम्पन्नः भविष्यति इति विचारः श्रीश्रीजगद्गुरुशङ्कराचार्याणां दक्षिणाम्नायपीठाधीश्वराणां श्रीश्रीभारतीतीर्थमहास्वामिनां पादारविन्देषु साष्टाङ्गप्रणामपूर्वकं विज्ञापितः।

श्रीशारदाचन्द्रमौलीश्वरस्य कृपया श्रीगुरुजीजन्मशताब्दकार्यक्रमाः यशस्वितया सम्भवेयुः, तदङ्गतया अग्रिमे वर्षे समग्रे देशे आयोजयिष्यमाणाः कार्यक्रमाः निर्विघ्नं सम्पन्नाः स्युः, हिन्दुसमाजबान्धवाः सर्वे श्रेयोभाजः भवेयुः च इति श्री श्रीचरणाः आशीर्वादम् अकुर्वन्।

(प्रशासनाधिकारिणः परतया)





युगाब्द : ५१०७

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

प्रधान कार्यालय
डा. हेडगेवार भवन, महाल, नागपूर – 440 032
दूरभाष : 2723003, 2720150 फॅक्स : (0712) 2721589
E-mail : hedgewarbhavan@rediffmail.com



शुभकामना

श्रेष्ठतम विचार भी तभी स्वीकृत होता है, जब उस विचार को धारण करने वाला समाज सुसंगठित व बलसम्पन्न हो। अध्यात्म पर आधारित समस्त मानवों के कल्याण की कामना करने वाले हिन्दू समाज को संगठित करने का जो कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नाम से 1925 में शुरू हुआ था, उसकी धुरा सन् 1940 में द्वितीय सरसंघचालक प.पू. श्री गुरुजी ने सँभाली और लगातार 33 वर्षों तक अहर्निश साधनारत रहकर समग्र देश में ही नहीं तो विदेशस्थ हिन्दू समाज में भी जागृति निर्माण की। उनकी जन्मशताब्दी का अवसर हिन्दू चिन्तन के प्रचार–प्रसार का उत्तम अवसर है। पाश्चात्य भोगवादी अवधारणा ने यदि संघर्ष और विनाश को जन्म दिया है तो राष्ट्र की हिन्दू अवधारणा ही विभिन्न राष्ट्रों के प्रकृति वैचित्र्य के बीच समन्वय स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। इस दृष्टि से प.पू. गुरुजी के ये विचार ध्यान देने योग्य हैं – "जब तक मानव, मानव रहेगा; जब तक उसकी भिन्न गुण प्रकृति बनी रहेगी; जब तक गुण वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाला तथा उसके अनुसार चलने वाला राष्ट्र रहेगा; तब तक अपनी सम्पूर्ण शक्ति और बुद्धि उसके समन्वय में लगानी चाहिए। मानवता के विकास व कल्याण के लिए राष्ट्रों को उनकी सम्पूर्ण विशेषताओं तथा विविधताओं के साथ विकसित करना परमावश्यक है।" अपने हिन्दू राष्ट्र के इस जीवनोद्देश्य को साकार करने में हम सब जुटें। यही प.पू. श्री गुरुजी के प्रति हमारी सच्ची आदरांजलि होगी।

कु.सी.सुदर्शन

(कुप्.सी.सुदर्शन)

जगद्गुरू रामभद्राचार्य
विकलांग विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, उ0प्र0–210204

Jagadguru Rambhadracharya
Handicapped University
Chitrakoot, UP-210204

Phone : 05198-224481, 224413 Fax : 05198-224293 E-mail : jrhuniversity@yahoo.com


जगद्गुरु रामभद्राचार्य

स्वस्ति। राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघस्य द्वितीयसरसंघचालकमहाभागानां गुरुगोलवलकरमहाशयानां व्यक्तित्वेनाहं अतितरां प्रभावितः। आजन्मनैष्ठिकब्रह्मचर्यव्रतविभ्रतां राष्ट्रैकचक्षुषां तेषां श्रीरामाभिन्नराष्ट्रे यादृशी निष्ठा सा सहस्त्राब्दं यावत् जनानां प्रेरणास्रोतो भविता। इति सप्रत्ययं मामकं मनः प्रत्येति। अत्र तेषां एकं राष्ट्रनिष्ठाप्रसंगं उदीरयामि। ब्रह्मदेवनामा निजपित्रोरेकलः पुत्रः गुरुजीमहाशयैः स्वयं सेवकत्वेन गृहीतः तन्मातरं प्रति कथितम् यत् तव पुत्रः पुनरागमिष्यति। पंचदशवर्षाणि व्यतीतानि ब्रह्मदेवो गृहं न प्रत्यागतः। तदा तन्माता पुनः गुरुजी महाराजं अक्षिप्तवती। अनन्तरं स विनोदेन कथितवान् यन्मातः त्वमिमं केन नाम्ना सम्बोधयसि सा उदतरत् इममहं ब्रह्मा कथयामि। तदा गुरुजीमहाराजाः कथितवन्तः तर्हि ब्रह्मणः एकदिनान्तन्तरं अयं तव पार्श्वे आगमिष्यति। अर्थात् अयं अस्मिन जन्मनि राष्ट्रस्य जातः। एवंविधाः जनाः केषां न प्रातःस्मरणीया भवन्ति।

अहमत्र एकं श्लोकं कथयित्वा विरमामि–

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामयो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः।।

इति मंगलमाशास्ते

राघवीयो जगदगुरुरामानन्दाचार्यः स्वामीरामभद्राचार्यः

जीवनपर्यन्त कुलाधिपतिः

जगद्गुरुरामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालयस्य



।। अर्हम् ।।



वह व्यक्ति महान होता है, जिसमें शक्ति के साथ विनम्रता, बौद्धिकता के साथ चरित्र का मणिकांचन योग होता है। मैंने गुरु गोलवलकर जी में इस महानता का साक्षात् किया। वे सन् 1950 में जयपुर में जब प्रथम बार आचार्य तुलसी से मिले, सौहार्दपूर्ण वातावरण में विचार–विनिमय हुआ और दोनों में विचार–सामंजस्य की अपेक्षा आत्मीयता का स्पर्श हो गया। वह सम्पर्क आजीवन चला, उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

सन् 1964 में हम लोग दिल्ली में चातुर्मास बिता रहे थे। लाला हंसराज आदि कार्यकत्ताओं ने कहा दिल्ली में ओ.टी.सी. का मासिक कार्यक्रम है। एक दिन आप उसमें उपस्थित रहें। मैंने उनका अनुरोध स्वीकार किया और पूरे दिन वहाँ रहा। गुरुजी ने भोजन व्यवस्था से लेकर संगठन द्वारा संचालित प्रवृत्तियों से हम सबको परिचित कराया। साधु–संतों के प्रति उनके मन में इतना आदर का भाव देखा तो त्यागप्रधान भारतीय संस्कृति का जीवन्त चित्र सामने आ गया।

आचार्य तुलसी दक्षिण यात्रा से उत्तर भारत की ओर आ रहे थे। नागपुर में हमारा आगमन हुआ। मध्याह्न का समय। हम लोग आचार्य तुलसी के उपपात में आगम–संपादन का कार्य कर रहे थे। देखा– कमरे के बाहर कोई एक व्यक्ति खड़ा है हमें अपनी प्रत्यभिज्ञा (पहचान) पर सन्देह और विश्वास का संर्घष झेलना पड़ा। एक ओर आकृति और विनम्रता बता रही थी कि ये गोलवलकर जी हैं दूसरी ओर शारीरिक कृशता सन्देह पैदा कर रही थी। आखिर हम लोग कक्ष से बाहर जाकर मिले तो वह संर्घष समाप्त हो गया। वे आर्चाय तुलसी के उपपात में आए। वार्तालाप शुरू हुआ। मैंने कहा– आप बिना किसी पूर्व सूचना के अकस्मात् आ गए। गुरुजी बोले मुझे पता चला कि आप (आचार्य तुलसी) यहाँ आए हैं। यह कैसे हो सकता है कि आप यहाँ आएँ और मैं न आऊँ? उन्हें दक्षिण यात्रा से परिचित कराया गया। वे बहुत प्रसन्न हुए।

उन दिनों हिन्दू शब्द बहुत चर्चित हो रहा था। आचार्य तुलसी ने उसकी स्पष्ट व्याख्या की और कहा–'हिन्दू को किसी समाज के साथ जोड़े, किसी धर्म विशेष के साथ न जोड़ा जाए।' गोलवलकर जी ने इस विचार के साथ अपनी सहमति प्रकट की। आचार्य के साथ उनकी आत्मीयता भारतीय संस्कृति के मूल्यों पर आधारित थी। भारतीय संस्कृति और उसके मौलिक मूल्य सुरक्षित रहें, इस विषय में दोनों में एकमत्य था।

विनम्रता, गंभीरता, धृति और पारस्परिक सौहार्द– ये संगठन के मूल तत्व हैं। गोलवलकर जी ने अपने जीवन में इन गुणों का उदारीकरण किया। उनकी शताब्दी का आयोजन केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए ही नहीं, किन्तु संगठन का मूल्यांकन करने वाले सभी जनों के लिए प्रेरक बने।

15 जनवरी, 2006, सगाना (पंजाब)

आचार्य महाप्रज्ञ



Secretary to
HIS HOLINESS THE DALAI LAMA



Message

His Holiness offers his congratulations to the organisers of the Birth Centenary Celebrations of Shri Guruji Madhava Sadasiva Golwalkar, noted thinker, spiritual practitioner and social organiser.

He is happy to note that Social Harmony is the theme of the celebrations. Because human beings are dependent on each other in many essential ways, he repeatedly advises that we need to cultivate the positive humane values that enable us to live in peace and harmony with one another. As the source both of inner tranquillity and peace in the world, compassion and tolerance are fundamental to the continued survival of our species. Such values give meaning to our lives and allow us to be truly constructive in our relations with others.

His Holiness offers his greetings to all those participating in the year-long events planned for the occasion and hopes for the success of the Centenary Celebration.

Tenzin Geyche Tethong

10 February 2006

Thekchen Choeling, McLeod Ganj 176219, Dharamsala, Himachal Pradesh, India
Tel. : 0091-1892-221343 / 221879 / 221210 Fax : 0091-1892-221813 E-mail : ohhdl@dalailama.com

श्री शंकराचार्यो विजयतेरॉम्

प्रातः स्मरणीय धर्मसम्राट अनन्त श्री समलङ्कृत श्री मज्जयोतिष्पीठाधीश्वर जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य

श्री स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम (हिमालय)



स्वामी वासुदेवानंद जी

गुरुजी यह नाम सुनकर स्वाभाविकी चेष्टा जागृत होती है कि गुरुजी कौन थे? उनका क्या वैशिष्ट्य था ? इसका संक्षिप्त कथन यह है कि श्री गुरुजी संघ के दूसरे सरसंघचालक यानी अखिल भारतीय संघ प्रमुख थे। आपश्री का जन्म सन् 1906 में हुआ था। यह सन् 2006 आपके जन्म शताब्दी की स्मृति लेकर आ रहा है। 'श्री गुरुजी' आपका मूल नाम नहीं था। संस्कृत एवम् संस्कृति की राजधानी काशी में जब आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। तब छात्र आपको आदर से गुरुजी कहा करते थे उसी समय से वे 'गुरुजी' प्रसिद्ध हो गए। वही नाम संघ एवम् देश भर में प्रचलित हो गया। उनका पितृ प्रदत्त नाम था– 'माधव राव सदाशिव राव गोलवलकर'। सदाशिवराव उनके पिता का तथा उनकी माँ का नाम लक्ष्मीबाई था। आपका मूल निवास नागपुर (महाराष्ट्र) में था। बाल्यकाल में गुरुजी को स्नेह में मधु नाम से पुकारा जाता था। लगता है यह नाम उनकी मधुरिमा का द्योतक था। अपने पिता की 9 सन्तानों में अकेले जीवित श्री गुरुजी वालयतः असाधारण प्रतिभा एवम् स्मरण शक्ति वाले थे। साथ ही देश के प्रति निष्ठा, देशवासियों के प्रति सौहार्द्र एवम् सनातन संस्कृति की प्रियता रही इसीलिए गुरुजी ने सनातन धर्म को ही हिन्दू धर्म वाच्य किया। गुरुजी के घर का सात्विक और धार्मिक वातावरण ही उनके संस्कार में आ गया। बालक उत्तरोत्तर प्रतिभावान दृष्टिगत होने लगा।

सन् 1924 में इण्टर की परिक्षा पास कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.एस.सी. की पढ़ाई के लिए चले गए। वहाँ जाकर गुरुजी ग्रन्थालय में अपनी ज्ञान पिपासा की तृप्ति के लिए एक–एक कर ग्रन्थ का आद्योपान्त अध्ययन करने लगे। उनका नियम था वे जब जो ग्रन्थ पढ़ते उसको पूर्ण करके ही उठते। विशेषता यह थी कि उनका मस्तिष्क उसे अवधारित कर लेता था क्योंकि एकाग्रचित्तता उनमें निहित थी। एक बार अध्ययन कर रहे थे उनके पैरों

में बिच्छू ने डंक मार दिया। परन्तु आप उस भाग को थोड़ा सा काटकर पोटेशियम परमैंगनेट के पानी में पैर रख कर पढ़ने में पूर्ववत् तल्लीन हो गए। एक मित्र ने आश्चर्य से पूछा, 'इस दर्द के बीच आप स्वाध्याय कैसे कर रहे हैं?' शिक्षार्थी माधवराव जी ने उत्तर दिया, 'बिच्छू ने पैर में डंक मारा है सिर में तो नहीं'। इतना ही नहीं, कई बार पैर में भयानक पीड़ा को भी शिक्षा एवम् देश के सामने महत्त्व न देकर शान्तचित्त से सहन किया। ऐसी असामान्य सहनशक्ति जन साधारण में नहीं हो सकती। एम.एस.सी. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके पुनः नागपुर आ गए।

कुछ दिन पश्चात् चेन्नै के मत्सालय में शोध कार्य करने हेतु चले गए। एक बार उस प्रयोगशाला की प्रदर्शनी लगाई गई और यह निश्चय हुआ कि इस प्रदर्शनी को देखने के लिए कोई भी आए, उसे प्रवेश शुल्क देना ही पड़ेगा। हैदराबाद से निजाम भी उस प्रदर्शनी को देखने के लिए आने वाले थे। प्रबन्धकों ने निश्चय किया कि निजाम जैसे बड़े आदमियों से शुल्क नहीं लेना चाहिए। परन्तु आपके आग्रह के कारण निजाम को भी प्रवेश शुल्क देकर ही अंदर जाना पड़ा। यह उनकी अनुशासन प्रियता थी। सन् 1931 अगस्त में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य करने लगे। अपने वेतन का अधिकांश भाग छात्रों की सेवा में लगा देते थे। अध्यापन की निर्धारित अवधि पूर्ण होने पर सन् 1933 के फरवरी मास में आप पुनः नागपुर वापस आ गए।

समाज–सेवा की भावना गुरुजी में कूट–कूट कर भरी हुई थी। एक बार इनके माता–पिता ने ब्याह करने के लिए बहुत समझाया और कहा कि भावी वंश परम्परा की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है। उस समय श्री गुरुजी ने कड़े शब्दों में उत्तर दिया कि मुझ जैसे अनेकों वशों के निर्वंश होने पर भी यदि समाज का भला होता हो तो यह वर्तमान परिस्थिति में अनिवार्य है। इसलिए वंश नष्ट होने की मुझे लेश मात्र चिन्ता नहीं है। हिन्दू मात्र को अपना वंश स्वीकार करने की उनमें प्रथा थी।

जगह–जगह पर शिविर लगा कर हिन्दुत्व की धारा बहाने वाले श्री गुरुजी ने स्पष्ट कर दिया है कि "न हिन्दू पतितो भवेत्"। सन् 1956 में गुरुजी के 51वें जन्म दिन के अवसर पर देश भर में व्यापक जन जागरण एवम् उनको श्रद्धा समर्पण के सार्वजनीन कार्यक्रमों का आयोजन किया गया तब उन्होंने देश भर के अपने भाषणों में हिन्दू बन्धुओं को वापस हिन्दू धर्म की धारा में समरस होने का आह्वान किया था। वनवासी बन्धुओं की अपनी परम्परा उनके सर्वांगीण विकास तथा समग्र भारतीय समाज के साथ समरसत्ता लाने की दृष्टि से वनवासी कल्याण आश्रम की स्थापना एवम् इसकी प्रगति में भी आपने अहम् भूमिका निभाई। "हिन्दवः सोदराः सर्वे" का भी उद्घोष गुरुजी ने ही किया था। गुरुजी के सम्पूर्ण क्रिग्राकलापों में हिन्दुत्व की सुगन्ध एवम् देशप्रेम की महक आती रही। असामान्य व्यक्तित्व एवम् कृतित्व दोनों का संगम राष्ट्र जीवन के लिए दिव्य धारा है जो संघ, संघीजनों के लिए मानसिक शान्ति प्रदान करने वाला है। ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व वाले गुरुजी के प्रति इस शताब्दी समारोह में हमारी वाक्सुमनांजलि समर्पित है। इत्यलम्।

བཀའ་ཤག བཀའ་བློན་ཁྲི་པ་ཟམ་གདོང་སྤྲུལ་སྐུ་བསྟན་འཛིན། KASHAG
PROF. SAMDHONG RINPOCHE
Kalon Tripa

दिनांक ३.२.२००६

संदेश।

मुझे यह जानकर आनन्द का अनुभूति हुई कि श्री गुरू गोलवलकर जी का जन्म शताब्दी का आयोजन वर्षपर्यन्त मनाने जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति की संरक्षण एवं संवर्धन में श्री गुरूजी का योगदान अत्यन्त अविस्मरणीय हैं। उन्होंने भारतवर्ष में आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का जो कार्य सम्पादित किया है वह जगत् कल्याण की विशेष स्रोत रहा है। उनका जन्म शताब्दी के अवसर पर हम श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

जय जगत्।

स. रि.
समदोंग रिनपोछे
(कलोन ठिपा)

Central Tibetan Administration of His Holiness the Dalai Lama, Dharamsala - 176215, Distt. Kangra, H.P., INDIA
Off: (91)1892 - 223546, 222218, 222713 / Res: (91)1892 - 224652 / Fax: (91)1892 - 224914 / Email: samdhongr@yahoo.com

अ
प
नी
बा
त

शत नमन माधव चरण

'श्री गुरुजी', अनुपम नर-रत्नों की मालिका के एक जाजवल्यमान मणि थे। जगत् जननी भारत माता ने विश्व मानवता के कल्याण के लिए इस सनातन और चिरन्तन हिन्दूराष्ट्र के संवाहक के रूप में उन्हें अपनी गोद में जन्म दिया। कृतज्ञ राष्ट्र इस वर्ष को उनकी जन्मशताब्दी वर्ष के रूप में मनाकर अपने को धन्य मान रहा है।

भारत धर्मभूमि है, यहाँ अध्यात्म परम्परा के प्रतीक पुरुष श्री गुरुजी, जो श्री रामकृष्ण परमहंस देव के प्रमुख शिष्य स्वामी अखण्डानन्द के दीक्षित शिष्य हुए। उन्होंने जगदगुरु शंकराचार्य के अति सम्मान पद को विनम्रतापूर्वक छोड़कर संघ के परमपूज्य सरसंघचालक के रूप में ३३ वर्ष तक हिन्दू संगठन, हिन्दू जागरण के कार्य में अपने जीवन का क्षण-क्षण, कण-कण होम कर दिया।

पूज्य डाक्टर हेडगेवार की सामाजिक और श्री गुरुजी की आध्यात्मिक धारा के मिलन से बने प्रयाग से बही संघ धारा ने आज सम्पूर्ण हिन्दू जगत् को आप्लावित कर दिया है। कोटि-कोटि हृदयों को राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा दे रहा है।

हिन्दू समाज को जाति, पन्थ, मत, प्रान्त, छूत-अछूत, नगर, ग्राम, वन - सब भेदों से ऊपर उंठाकर 'हिन्दवः सोदराः सर्वे, न हिन्दू पतितो भवेत्' का उद्घोष गुँजा कर समरसता निर्माण के कार्य में आप प्रेरक थे। आपने ऐतिहासिक कारणों से दूर हो गए बान्धवों के लिए घर वापसी का मार्ग प्रशस्त किया।

मत, पन्थ, सम्प्रदायों के ऊपर उठकर जैन, बौद्ध, सिख, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सबकी साझा पहचान 'हिन्दू' के रूप में 'विश्व हिन्दू परिषद्' के मंच पर सबको एक साथ लाने का कार्य श्री गुरुजी के जीवन की महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय उपलब्धि है।

समाज जीवन के सभी क्षेत्रों की पुनर्रचना अपने सनातन जीवन मूल्यों के आधार पर निर्मित हो- इसके लिए विद्यार्थी, मजदूर, किसान आदि विविध क्षेत्रों में आपकी प्रेरणा पाकर अनेक संगठन खड़े हुए, जिन्होंने भारत के इतिहास को नया दिशा बोध; साहित्य, पत्रकारिता को नव प्रेरणा दी। समाज जीवन में कार्यरत अनेक विचारधाराओं से जुड़े व्यक्तियों को राष्ट्र के अनुकूल बनाया। शिक्षा प्रसार

और सेवा प्रकल्पों की शृंखला खड़ी की।

अपनी दूरदृष्टि से राष्ट्र पर आने वाले संकटों को समय रहते चेताया और राष्ट्र-विभाजक मानसिकता के विरुद्ध एक सुदृढ़ दीवार बन खड़े रहे।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ ही गोवा मुक्ति, दादर नगर हवेली की मुक्ति, जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत में विलय, विभाजन से त्रस्त समाज के पुनर्वास, चीन के आक्रमण की पूर्व चेतावनी, पड़ोसी नेपाल से सम्बन्ध दृढ़ीकरण, राष्ट्रीय विपत्तियों और प्राकृतिक आपदाओं के समय समाज को एकजुट होकर मुकाबले के लिए तैयार करने का कार्य वे जीवन भर करते रहे।

जन्मशती के पावन अवसर पर उनके स्मरण में ये पंक्तियाँ समीचीन लगती हैं-

'तुमने दिया राष्ट्र को जीवन राष्ट्र तुम्हें क्या देगा।
अपनी आग तेज करने को नाम तुम्हारा लेगा।'

श्री गुरुजी की प्रेरणा विश्व के मानवता प्रेमी, राष्ट्र भक्तों तक पहुँचाने के उद्देश्य से उनके जन्मदिन विजया एकादशी- (माघ कृष्ण एकादशी) २४ फरवरी, २००६ उनकी जन्मशताब्दी वर्ष का शुभारम्भ, उनके और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जन्म नगर नागपुर में हो रहा है। इस पुण्य-पुनीत अवसर पर श्री गुरुजी के श्रद्धापूर्वक स्मरण के लिए यह पत्रिका एक लघु प्रयास है।

श्री गुरुजी जन्मशती समारोह के अध्यक्ष पूज्य स्वामी सत्यमित्रानन्द जी, महामंत्री डॉ. बजरंग लाल गुप्त जी की आज्ञानुसार एकत्रित सामग्री में पूज्य सरसंघचालक मा. सुदर्शन जी, मा. सूर्यनारायण राव, श्री मा. गो. वैद्य, श्री रामा जॉयस, श्री पी. परमेश्वरन, डॉ. मुरली मनोहर जोशी आदि वरिष्ठ अधिकारियों तथा पूज्य सन्तों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, हम उनके आभारी हैं।

इस पत्रिका हेतु सामग्री का संकलन दिल्ली के श्री किशोर कान्त, श्री मिलिन्द ओक, नागपुर से श्री रामभाऊ, श्री विकास तेलंग आदि के सहयोग से संभव हुआ।

पत्रिका में श्री गुरुजी के जीवन-चरित्र और विचार की झाँकी मात्र प्रस्तुत है, जो उनके विराट् व्यक्तित्व की ओर जाने में हम सबके लिए प्रेरक हो- श्री परमेश्वर से यही प्रार्थना है।

आपका

अधीश

(अधीश कुमार)

कार्यरत रहना ही सच्ची श्रद्धांजलि

(पूज्य श्री गुरुजी की मृत्यु के तेरहवें दिन नूतन सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस जी का श्रद्धांजलि भाषण)


बाला साहब देवरस

मेरा यह अहोभाग्य रहा कि मेरा संघ के दो महापुरुषों संघ निर्माता डा. हेडगेवार तथा उनके पश्चात् अपने पूजनीय श्री गुरुजी के साथ बड़ा निकट का संबंध रहा। डाक्टर जी के समय छोटी आयु के कारण मेरी समझ कम थी तथा उनके सहवास में मेरा गठन हो रहा था। मेरे समान ही मेरे अन्य साथियों, जो आज भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रमुख के नाते कार्य कर रहे हैं, की स्थिति थी। जब पूजनीय गुरुजी के साथ हमारा संबंध आया, तब हम डाक्टर जी द्वारा गढ़े जा चुके थे। हम लोगों की व्यावहारिक शिक्षा भी समाप्त हो चुकी थी और उस समय तक कोई नागपुर में, तो कोई भिन्न-भिन्न प्रांतों का कार्यभार सँभालने लगा था। जब पूजनीय गुरुजी के साथ संपर्क आया, तब हम अनुभवी हैं, हमने कुछ कार्य किया है, हम कुछ जानते हैं ऐसा भाव या अहंकार मन के कोने में नहीं रहा होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि सन् 1940 में पूजनीय डाक्टर जी के देहांत के पश्चात् पूजनीय श्री गुरुजी सरसंघचालक बने, तथापि उसके पूर्व भी हम लोगों का उनके साथ संबंध आया था। परंतु उनके संबंध में उस समय हमारी निश्चित कोई धारणा नहीं बन पाई थी। वैसे वे बुद्धिमान तथा बहुश्रुत हैं, यह हम लोगों ने सुना था। उन गुणों का हम अनुभव भी करते थे। परंतु उन्होंने अपने भावी जीवन की दिशा तब तक निश्चित नहीं की थी। उनकी रुचि हमें आध्यात्मिकता की ओर अधिक दिखाई दी। सर्वसाधारण लोगों जैसी वेशभूषा करनेवाले गुरुजी को हमने कुछ दिनों के बाद दाढ़ी-केश बढ़ाए हुए देखा। इन सब बातों के कारण हम लोग उनके विषय में कोई निश्चित धारणा नहीं बना पाए।

इन प्रारंभिक संबंधों के बाद सन् 1939 में डाक्टर जी की उपस्थिति में सिंदी में हुई एक दीर्घकालीन बैठक में उनके निकट संपर्क में रहने का अवसर मिला। उस बैठक में हम लोगों ने श्री गुरुजी की वादविवाद पटुता, बुद्धिमत्ता तथा अभिनिवेश के साथ स्वमत प्रतिपादन की विशेषताएँ देखीं। साथ ही बैठक में एक निर्णय हो जाने पर उसे शिरोधार्य मानकर चलने की उनकी संघवृत्ति (टीम-स्पिरिट) का भी परिचय हुआ।

डाक्टर जी-गुरुजी दोनों एक

सन् 1938 से 1940 में उनके साथ मेरा और घनिष्ठ संपर्क आया। 1940 के नागपुर संघ शिक्षा वर्ग के वे सर्वाधिकारी थे। उनके साथ 40 दिन के इस सहवास के काल में मुझे

उनके व्यक्तिमत्व के विभिन्न पहलुओं तथा गुणों का परिचय हुआ। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि डाक्टर जी उनकी ओर विशेष दृष्टि से देखते हैं। डाक्टर जी 1938 से संघकार्य के बारे में कुछ चिंतित से दिखाई देने लगे थे। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, जिसके कारण वे मनचाहा दौरा नहीं कर पाते थे। आज जैसा संघकार्य का उस समय वटवृक्ष के समान विस्तार नहीं हो पाया था। गुरुजी के साथ संपर्क बढ़ने पर वे प्रसन्न हुए और हम लोगों से कहने लगे कि मुझे अंग्रेजी व हिंदी दोनों भाषाओं में धाराप्रवाही विचार रख सकने की जिसकी क्षमता है, ऐसा पुरुष मिल गया है। हम लोगों ने जब श्री गुरुजी का प्रथम अंग्रेजी भाषण सुना, तब उनका अंग्रेजी भाषा पर असाधारण प्रभुत्व देखकर हम स्तंभित रह गए। श्री डाक्टर जी के व्यक्तित्व में ऐसा कुछ अवश्य था कि एक बार मिलने के लिए आया हुआ व्यक्ति बार–बार उनके संपर्क में आने की इच्छा करने लगता। श्री गुरुजी का भी वही हुआ और वे डाक्टर जी की ओर धीरे–धीरे आकृष्ट हुए और डाक्टर जी ने 1940 में संघकार्य का संपूर्ण दायित्व उनपर सौंप दिया। उस समय श्री गुरुजी की आयु लगभग 34–35 वर्ष की होगी। उनका सार्वजनिक जीवन का अनुभव भी अधिक नहीं था। उन्होंने अपने अंतिम पत्र में जो कहा है कि उन पर जब सरसंघचालक पद का भार आ पड़ा, तब वे कुछ जानते नहीं थे। वह औपचारिकता नहीं, वस्तुस्थिति थी। अर्थात् उन्होंने सफलता का काफी श्रेय सहयोगियों को दिया है, परंतु स्वयं श्री गुरुजी का श्रेष्ठ व्यक्तिमत्व भी कारण है। सरसंघचालक पद का भार ग्रहण करने के बाद अत्यंत श्रद्धा तथा लगन के साथ वे कार्य में जुट गए। उनके स्वभाव में आमूलाग्र परिवर्तन हो गया। प्रारंभ में वे क्रोधी थे। पर उन्होंने अपना स्वभाव बदल डाला। प्रारंभिक दिनों में बैठक में कभी–कभी श्री गुरुजी उग्र रूप धारण तो कर लेते थे, परंतु कुछ मिनटों के बाद वे कोई ऐसी बात छेड़ देते थे कि बैठक का गंभीर वातावरण दूर होकर हँसी का वातावरण फैल जाता था। वे हम लोगों से कहते थे कि यद्यपि वे शीघ्रकोपी हैं, तथापि दीर्घद्वेषी नहीं हैं।

> **श्री गुरुजी के मन में विभाजन की पीड़ा थी, अपने भाषण में उसकी वे आलोचना भी करते थे फिर भी वे लोगो को क्रोध न करने तथा संतुलन न खोने का परामर्श देते थे।**

विनम्र उग्रता

देश के विभाजन तथा संघ पर प्रतिबंध के समय उनकी क्षमावृत्ति और उंग्रवृत्ति दोनों का अनुभव मैंने स्वयं किया है। नवंबर 1947 से जनवरी 1948 तक, अर्थात् संघ पर प्रतिबंध लगने तक मुझे श्री गुरुजी के साथ दौरा करने का अवसर मिला था। विभाजन के कारण हिंदुओं पर जो संकट आया था उसमें संघ

स्वयंसेवकों ने अपने बंधुओं को बचाने में जो साहस प्रकट किया था, उसके कारण श्री गुरुजी जहाँ भी जाते वहाँ लाखों लोग उनका भाषण सुनने के लिए एकत्र हुआ करते थे। लाखों लोगों का सभाओं में आना, उनका श्रद्धा से नतमस्तक होना देखकर दूसरा कोई व्यक्ति होता तो अंहकार से फूल उठता। श्री गुरुजी के मन में विभाजन की पीड़ा थी, अपने भाषण में उसकी वे आलोचना भी करते थे। फिर भी वे लोगो को क्रोध न करने तथा संतुलन न खोने का परामर्श देते थे। मुंबई की महती सभा में उन्होंने जो भाषण दिया वह चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने वहाँ कहा था कि बाहरी आक्रमण के समय 'वयं पंचाधिकं शतम् (हम एक सौ पाँच) हैं'।

परंतु जब शासनकर्ताओं ने बिना कारण संघ पर प्रतिबंध लगाया, तब उन्होंने शासनकर्ताओं के प्रति कड़ा रुख अपनाया था। प्रतिबंध काल में सहस्रों स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह कर कारावास स्वीकार किया। श्री गुरुजी को भी बंदी बनाया गया। संघ पर लगाई गई पाबंदी के विषय में उन्होंने सरकार का कडे शब्दों में निषेध किया। गृहमंत्रालय के एक अधिकारी ने श्री व्यंकटराम शास्त्री के निकट जो उन दिनों संघ और सरकार के बीच मध्यस्थता कर रहे थे, कहा भी था कि पूजनीय गुरुजी के पत्रों की भाषा बहुत कड़ी रहती है। इस पर श्री व्यंकटराम शास्त्री ने एक वक्तव्य देते हुए उन्हें उत्तर दिया था–

Mr. M.S. Golwalkar is a blunt man, innocent of the etiquette required in a correspondence with Government. The soft word that turneth away wrath is not among his gifts.

गुरुजी क्रोध का शमन करनेवाली मधुर भाषा नहीं जानते थे, ऐसा नहीं था। परंतु संघ की प्रतिष्ठा रखने के लिए उन्होंने उस समय अत्यंत कड़ा रुख अपनाया था।

डाक्टर जी ने संघकार्य की आधारशिला रखी और श्री गुरुजी ने प्रासाद खड़ा किया। वे संघकार्य रूपी प्रासाद के शिल्पी थे। अनेक संकटों में से उन्होंने संघकार्य को बढ़ाया। संकटों के सामने वे विचलित नहीं हुए।

देश भ्रमण व पत्र व्यवहार का विश्व विक्रम

उनकी कार्यपद्धति की अनेक विशेषताएँ हैं। प्रतिबंध काल और कैन्सर के आपरेशन के बाद का 3–4 मास का समय छोड़ दें तो लगभग 32 वर्ष लगातार प्रतिवर्ष एक बार संघ शिक्षा वर्ग के निमित्त और दूसरी बार प्रांतशः कार्यक्रमों के निमित्त संपूर्ण देश का प्रवास करते रहे। उनका अंतिम प्रवास मार्च के मध्य में समाप्त हुआ और उसके ढाई महीने बाद उनकी मृत्यु हुई। उनके जैसा अपने देश का इतना विस्तृत दौरा विश्व के किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया होगा। इस दौरे में किसी न किसी व्यक्ति के घर में वे ठहरा करते थे तथा उस घर के सभी व्यक्तियों को अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से आकर्षित कर लेते

थे। इस प्रकार उनका संबंध लाखों परिवारों के छोटे-बड़े व्यक्तियों से आया तथा वे श्री गुरुजी को अपने परिवार का ही एक निकट व्यक्ति मानने लगे थे। श्री गुरुजी उनके संबंध की पूर्ण जानकारी रखते थे और दुबारा भेंट होने पर प्रत्येक के विषय में नाम लेकर जानकारी पूछते थे। उनकी मृत्यु के बाद जो शोक-संवेदना पत्र यहाँ आए हैं, उनमें कईयों ने लिखा है कि हम पुनः अनाथ हो गए हैं। जैसा उनका प्रत्यक्ष संपर्क अद्भुत था, वैसा उनका पत्रव्यवहार भी था।

पूजनीय डाक्टर जी पत्र लिखते थे, तब पत्र के एक-एक शब्द पर डाक्टर जी हम लोगों के साथ चर्चा करते थे। उस समय देश की परिस्थिति और संघकार्य का फैलाव के कारण अधिक पत्र लिखने की आवश्यकता हो-ऐसा नहीं था। परंतु श्री गुरुजी के कार्यकाल में पत्रलेखन के क्षेत्र की कल्पना करते हो किसी एक व्यक्ति द्वारा यह होना असंभव लगता है।

परंतु श्री गुरुजी स्वयं पत्र लिखते थे। आसपास मिलने आए हुए स्वयंसेवक बैठे हुए हैं, वार्तालाप चल रहा है, हास्य विनोद हो रहा है, और उसी बीच गुरुजी पत्र लिखते जा रहे है, यह दृश्य सबके लिए परिचित था। प्रतिदिन पाँच पत्र के हिसाब से पूरे 33 वर्षो में उन्होंने कितने पत्र लिखे होंगे इसका गणित करें तो आश्चर्यचकित होना पडेगा। पत्र लिखने का भी यह एक 'विश्व-विक्रम' (World-Record) हुआ कहना पड़ेगा।

अपनी विशिष्ट कार्य पद्धति के द्वारा उन्होंने संघकार्य का आज का स्वरूप खड़ा किया है। डाक्टर जी ने संघकार्य की आधारशिला रखी और श्री गुरुजी ने प्रासाद खड़ा किया। वे संघकार्य रूपी प्रासाद के शिल्पी थे। अनेक संकटों में से उन्होंने संघकार्य को बढ़ाया। संकटों के सामने वे विचलित नहीं हुए, जैसा एक संस्कृत सुभाषितकार ने कहा है कि

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तसमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।।

जिस प्रकार उदय तथा अस्त के समय सूर्य का रक्तवर्ण एक-सा रहता है, वैसे ही महापुरुष संपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं। उसी प्रकार श्री गुरुजी का व्यवहार अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में एक-सा रहा।

उनके व्यक्तिमत्त्व का हर पहलू आश्चर्यजनक था। उनका स्वास्थ्य प्रारंभ में उत्तम था और वे मलखंभ के चैम्पियन थे। हम लोगो के सामने तो उनका दुर्बल शरीर ही रहा। इसलिए ये बातें सुनकर संभव है आश्चर्य लगता होगा। वे उत्तम संगीतज्ञ थे। स्वयं उत्तम वंशीवादक थे। नागपुर के सुप्रसिद्ध अंध-गायक सावळाराम उनके अभिन्नहृदय मित्र थे। परंतु संघकार्य में जुट जाने के बाद उन्होंने सारा लक्ष्य उसी ओर केंद्रित किया। अपने स्वास्थ्य की चिंता नहीं की। अखंड कार्यरत रहे। अपनी शारीरिक पीड़ाओं के संबंध में कभी किसी से कुछ नहीं कहा, पर दूसरों के स्वास्थ्य के बारे में दस बार पूछा करते थे। नागपुर में रहते, तब बीमार स्वयंसेवकों के घर मिलने जाते, मेडिकल

कॉलेज में रुग्ण स्वंयंसेवक को देखने जाते थे।

उनके आदर्श के कारण संपूर्ण देशभर में संघकार्य का एक विशेष वायुमंडल निर्माण हुआ। जब किसी संगठन के छोटे से लेकर बड़े तक सभी एक विशिष्ट व्यवहार करते हैं, तब उस संगठन का वायुमंडल निर्माण होता है। आज जो कुछ संघ के विषय में लोभनीय, प्रशंसनीय दिखाई देता है उसका संपूर्ण श्रेय पूजनीय गुरुजी को है। वे हमारे बीच से चले गए हैं। वैसे, मानव मर्त्य है– कहकर मन को कितना भी समझाने का प्रयत्न किया, तो भी धैर्य नहीं बँधता।

दैनन्दिन संस्कार-शाखा का आग्रह

परंतु यह भी हम स्मरण रखें कि यदि हम शोक करते बैठे रहे, तो क्या वह गुरुजी को अच्छा लगेगा? अंत तक जिन्होंने संघ की प्रार्थना की, कार्यशील स्थिति में देह शांत किया, उनके हम अनुयायी दुःख करते नहीं बैठेंगे। उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण करना तभी होगा, जब हम अपना कर्तव्य पूर्ण करने की दृष्टि से प्रतिदिन संघ–शाखा में जाने का निश्चय करेंगे। श्री गुरुजी का दैनिक शाखा का आग्रह अत्यधिक था। शाखा पर सामूहिक जीवन का संस्कार होता है। तथाकथित बुद्धिवादी संस्कार–श्रद्धा आदि बातों की हँसी उड़ाया करते हैं, परंतु उन लोगों का बुद्धिवाद उथला है। गुरुजी बुद्धिवादी तो थे, पर मानते थे कि सच्चा बुद्धिमान वही है, जो श्रद्धा, संस्कार आदि का महत्त्व समझता है।

अपने दैनिक जीवन के 24 घंटों में से एक घंटा भी राष्ट्र कार्य के लिए न देनेवाला व्यक्ति राष्ट्र के लिए कुछ नहीं कर सकता। प्रतिदिन कंधे से कंधा लगाकर कार्य करने का जिसे अभ्यास हुआ हो, जिसकी एकात्मता की अनुभूति प्रतिदिन साथियों के साहचर्य से परिपुष्ट हुइ हो, वही राष्ट्रहित के कार्य में आगे आ सकता है।

सच्ची श्रद्धांजलि

हम स्वयंसेवक अपने व्यवहार को निर्दोष बनाकर तथा अपने कर्मक्षेत्र में अपना कर्तव्य प्रामाणिकता से पूर्ण करते हुए समाजजीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। जीवन में हम विभिन्न भूमिकाओं में काम करते हैं। जीवननिर्वाह के लिए कोई नौकरी करता है तो कोई अन्य कुछ। पारिवारिक जीवन में पिता, भाई, पुत्र आदि संबंध से बँधा रहता है। परिवार में, कार्यक्षेत्र में, नागरिक के नाते हम सबका व्यवहार आदर्श रहना चाहिए। दैनंदिन शाखा में जाने से अपनी संघशक्ति बढ़ेगी तथा अपने उत्तम आचरण से समाजजीवन में हम विशिष्ट परिवर्तन ला सकेंगे।

बड़ा तूफान आने के बाद जो हानि होती है, उसी प्रकार परमपूज्य गुरुजी की मृत्यु से एक बहुत बड़ा आघात हुआ है। आज गुरुजी हमारे बीच नहीं हैं, परंतु उन्होंने जो मार्गदर्शन किया उसके अनुसार चलने का हम दृढ़ संकल्प करेंगे, तो ही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ■

मैं नहीं, तू ही -मा. स. गोलवलकर

श्री गुरुजी एवं पू. ब्रह्मचारीजी


प्रो. राजेन्द्र सिंह

पूज्य प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी से यद्यपि मेरी माँ बहुत वर्षों से परिचित थीं। परन्तु मेरा अच्छा परिचय महात्मा गाँधी के हत्याकाण्ड के बाद तब आया, जब संघ पर प्रतिबंध लगा हुआ था। शाखाएँ बंद थीं परन्तु हम स्वयंसेवक कहीं–न–कहीं, किसी–न–किसी कार्यक्रम के बहाने इकट्ठे होते रहते थे। एक बार झूसी में महाराज जी के संकीर्तन भवन में कार्यक्रम रखा गया। पूज्य ब्रह्मचारी जी ने उन दिनों मौनव्रत ले रखा था और उनसे वार्ता स्लेट–पेंसिल के माध्यम से होती थी। महाराज जी (पू. प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी) के यहाँ हम सभी का बड़ा स्नेह–स्वागत रहा और प्रत्यक्ष भेंट–वार्ता में इतना प्रेम मिला जैसे कि मैं वर्षों से उनको केवल जानता ही नहीं, उनका अपना कोई हूँ। फिर तो यह परिचय बढ़ता ही गया, जब कभी समय मिला, उनके आश्रम की ओर मेरी मोटर साइकिल मुड़ जाती थी। संघ पर से प्रतिबंध उठवाने के लिए दिल्ली के शासन के प्रमुखों को श्रेष्ठ पुरुषों से जो पत्र लिखवाने की योजना चली थी, उसमें भी महाराज जी ने डा. राजेन्द्र प्रसाद को, जिनसे उनका निकट का स्नेह संबंध था, बड़ा मार्मिक और आग्रह का पत्र लिखा।

सन् 42 के अगस्त मास में आन्दोलन के कारण प्रयाग विश्वविद्यालय बन्द हो गया। तभी मेरा संघ–शाखा में प्रथम बार जाना हुआ। उसके पूर्व देश स्वतंत्र करने के कांग्रेस के प्रयत्नों में सहयोग देना और उन नेताओं को ही अपने मार्गदर्शक के रूप में मानना मेरा काम था। 42 में सभी नेताओं का एकाएक जेल में पकड़े जाना और पीछे अपने अनुयायियों को कुछ भी न बता जाना इस नेतृत्व के प्रति पहला सबसे बड़ा धक्का था। आनन्द भवन जाने पर भी वहाँ से कुछ भी रास्ता न मिला। फिर देश के लिए काम करने के अन्य मार्ग की खोज प्रारम्भ हुई। उसी में मेरा एक छोटा मित्र मुझे संघ–शाखा में ले गया। पढ़ाई के साथ शाखा में भी रुचि बढ़ती गई और सन् 43 में अधिक कुछ सीखने के लिए मैं काशी में लगे उस वर्ष के संघ शिक्षा वर्ग में जा पहुँचा। यद्यपि प्रारंभिक कष्ट तो बहुत लगे क्योंकि अनेक वर्षों से मैं गर्मी नैनीताल में बिताने का आदी बन गया था और काशी की मई–जून भट्ठी के समान ही थी, परन्तु उस वर्ग में पूज्य गुरुजी से प्रथम भेंट हुई। मैंने उनका भाषण 'शिवाजी महाराज का जयसिंह को पत्र' पर सुना। पूरे ढाई घण्टे मैं मन्त्र–मुग्ध–सा बैठा रहा और लगा कि आज सच्चा और सही मार्गदर्शक मिल गया है। पूज्य गुरुजी से परिचय भी विशेष प्रकार से हुआ क्योंकि मैं उसी समय एम.एस–सी. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण भी हुआ था। ज्यों–ज्यों संघ के अधिकाधिक कार्य का उत्तरदायित्व मुझे मिलता गया, पूज्य गुरुजी से प्रथम परिचय निकटता में बढ़ता गया। फिर तो कई बार वे

मेरे यहाँ ठहरे और कई–कई दिन साथ रहने का भी सौभाग्य बढ़ता गया। वे दिन बड़ी तेजी से कार्यवृद्धि के थे – 43 से 47 तक संघकार्य की वृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी रही। समूचा हिन्दू समाज संघ और पूज्य गुरुजी को अपने रक्षक और मार्गदर्शक के रूप में देखने लगा।

गुरुजी के दौरे अत्यन्त व्यस्त रहते थे और यद्यपि लगभग प्रतिवर्ष ही उनका एक दिन को प्रयाग आना होता था। परन्तु स्वयंसेवकों का एकत्रीकरण, कार्यकर्ताओं की बैठकें, प्रमुख पुरुषों से मिलना, इसी में सारा समय चला जाता था। मेरा भी पूज्य ब्रह्मचारी जी से उतना निकट का उस समय परिचय नहीं था और महाराज जी झूसी के बाहर जाते भी कम थे। इसीलिए दोनों महापुरुषों की भेंट बहुत देर से हुई। स्मरण आता है कि सन् 50–52 के समय वह भेंट हुई। यद्यपि इसके पूर्व 1940–41 में रेल के डिब्बे में पहले वे मिले थे। दोनों ने एक–दूसरे के विषय में इतना सुन रखा था कि लगा कि वर्षों के बिछुड़े बन्धु मिल रहे हैं। मानों प्रत्यक्ष राम–भरत का मिलन हो, देखने वालों के हृदय गदगद हो गये और आँखों में प्रेमाश्रु आ गए। फिर तो यह भेंट कोई न कोई प्रसंग लेकर होने लगी। पूज्य पुरुषोत्तमदास जी टण्डन का भी उन दिनों निवास प्रयाग में ही था। महाराज जी का और उनका बहुत ही स्नेह का संबंध था। वे भी बीच–बीच में उपस्थित रहते थे। गोरक्षा के प्रश्न पर तीनों का एक जैसी ही भावना का सम्बन्ध था और उस राष्ट्रीय विषय को लेकर अनेक योजनाएँ और कल्पनाएँ साथ–साथ बनतीं। कुम्भ के अवसर पर 1954 में गोहत्या निरोध समिति, प्रयाग का अधिवेशन हुआ और उसमें कई दिन इन श्रेष्ठ पुरुषों का साथ रहना हुआ। फिर मथुरा का अधिवेशन 55 में हुआ। सभी में संबंध बढ़ते–बढ़ते एकात्मता में परिणित हो गये। मैं तो केवल तिथियों का संयोग बिठाने वाला, ब्रह्मचारी जी महाराज का संदेश गुरुजी तक और वापसी संदेश महाराज जी तक पहुँचाने वाला था। पत्र में लिफाफे का जो उपयोग होता है वही मेरा रहा। वैसे एक का क्षेत्र भक्तिमार्ग से लोगों का हृदय शुद्ध करते हुए उनका नैतिक और सामाजिक स्तर उठाने का तथा दूसरे का हिन्दू समाज को संगठित कर उसे साहसी, पराक्रमी, क्रियाशील बनाने का था। परन्तु हिन्दू और हिन्दुस्थान के मान–बिन्दुओं की रक्षा दोनों का

गणतंत्र संचलन में स्वयंसेवक

श्री गुरुजी ने चीनी आक्रमण शुरू होते ही जो मार्गदर्शन दिया, उसके परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवक युद्ध प्रयत्नों में जनता का समर्थन जुटाने तथा उनका मनोबल दृढ़ करने में जुट गए। उनके सामयिक सहयोग का महत्त्व प्रधानमंत्री पं. नेहरू को भी स्वीकार करना पड़ा और उन्होंने सन् १९६३ में गणतंत्र दिवस के जनसंचलन (परेड) में कुछ कांग्रेसियों की आपत्तियों के बाद भी संघ के स्वयंसेवकों को भाग लेने हेतु निमन्त्रण भिजवाया। कहना न होगा कि संघ के तीन हजार गणवेषधारी स्वयंसेवकों का घोष की ताल पर कदम मिलाकर चलना उस दिन के कार्यक्रम का एक प्रमुख आकर्षण था।

मिलन बिन्दु था और अपने देश, समाज और धर्म को उठाने के मार्ग भले ही अलग लगें, उद्देश्य तो एक ही था। दोनों की सरलता, अहम् का स्पर्श मात्र भी न होना, विद्वता के साथ अतिशय विनम्रता एक–दूसरे की घनिष्ठता बढ़ाने में सहायक हुई। फिर तो एक प्राण दो शरीर वाली उक्ति चरितार्थ हो गई। पूज्य गुरुजी के 51वें जन्मदिवस के कानपुर के विशाल कार्यक्रम में पूज्य महाराज जी ही अध्यक्ष थे। प्रयाग से पहुँचने में देर हो गई। संघ का कार्यक्रम समय से प्रारम्भ होना चाहिए इसलिए कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया था। गुरुजी के स्वागत में भाषण हो रहा था और महाराज जी कार से उतर कर मंच की ओर बढ़ रहे थे। गुरुजी तेजी से मंच से उतरे और महाराज जी के सामने चरणस्पर्श के लिए झुके। महाराज जी ने स्वयं झुक कर उनको बीच में ही रोक लिया और दोनों आलिंगन में बद्ध हो गए। हजारों लोगों ने वह प्रेम मिलन देखा और दोनों की जय–जयकार के नारे फूट पड़े।

ऐसे अनेकों प्रसंग आते रहे और आपस में परामर्श के आधार पर गोरक्षा का कार्य पूज्य महाराज जी अधिकाधिक आगे बढ़ाते गए। एक वर्ष महाराज जी ने गोसेवा व्रत लेकर केवल टाट पहन कर सब लिखना–पढ़ना बंद कर, गाएँ चराना ही प्रारम्भ कर दिया। गोलोक वृन्दावन के उस व्रत के समापन पर पूज्य गुरुजी के साथ पंडित दीनदयाल जी भी आए थे। 1966 में पूज्य ब्रह्मचारी जी ने बद्रीनाथ में ही गोरक्षा के लिए एक अत्यन्त कठोर संकल्प ले लिया। ऋषिकेश और हरिद्वार आकर गोरक्षा के लिए आमरण अनशन की घोषणा हुई। महाराज जी के सभी प्रेमी अवाक् रह गए। पूज्य गुरुजी को समाचार मिला तो वे भी अत्यन्त चिन्तित हुए, परन्तु सार्वजनिक घोषणा के बाद परिवर्तन का कोई प्रश्न रहा नहीं। पूज्य महाराज जी ने गोलोक में ही यह व्रत लिया। उनके इस व्रत के साथ पुरी के शंकराचार्य पूज्य श्री निरंजनदेव तीर्थ ने भी आमरण अनशन प्रारम्भ किया।

एक महीने के अनशन में पूज्य महाराज जी अतिशय अशक्त हो गए। मैं उस समय विश्वविद्यालय से लगभग पूर्ण अवकाश लेकर कभी पूज्य ब्रह्मचारी जी के पास, कभी उनका कोई संदेश लेकर दिल्ली व कभी संघ दौरे पर रहा। इसी अनशन के साथ गोरक्षा के लिए दिल्ली में सत्याग्रह भी प्रारम्भ हुआ। सत्याग्रहियों की संख्या बढ़–बढ़कर जाने लगी। कई सहस्र सत्याग्रही तो मथुरा से ही गए। मथुरा के आसपास का वायुमंडल बड़ा उग्र होने लगा। अब महाराज जी के शरीर के दुर्बल होने के साथ मस्तिष्क पर भी प्रभाव पड़ने लगा। नींद प्रायः लुप्त हो गई। कोई विषय मस्तिष्क में बैठ जाता तो घण्टों–घण्टों उसकी चर्चा करते रहते। सर्दी के कारण शरीर को अत्यधिक कष्ट होता क्योंकि अन्दर कोई गर्मी देने वाला पदार्थ था ही नहीं। अँगीठी सेकने और कमरे को गर्म करने के लिए रखी जाती तो उसका धुँआ कमरे के वायुमण्डल को और भी विचित्र बना देता। गुरुजी का नाम बराबर उनकी जिह्वा पर रहता। बीच में गुरुजी दिल्ली आकर सर्वदलीय गोरक्षा समिति की बैठक में परामर्श करके गए भी थे, परन्तु महाराज जी की स्थिति अतिशय खराब हो जाने पर गुरुजी को फोन किया

गया। गुरुजी उन दिनों केरल के प्रवास पर थे। तुरन्त प्रवास स्थगित कर वे वृन्दावन आए और सर्वोच्च समिति की बैठक भी वहीं रखी गई। पूज्य ब्रह्मचारी जी की स्थिति से गुरुजी अत्यधिक चिंतित हुए। मथुरा के जिलाधीश और एस.पी. भी बड़े परेशान थे। उनको लग रहा था कि मथुरा के उग्र वातावरण में यदि महाराज जी को कुछ हो गया तो बहुत बड़े स्तर पर हिंसा प्रारम्भ हो जाएगी। पूज्य गुरुजी को तो लगा कि अब वह स्थिति आ गई है कि सर्वोच्च समिति पूज्य ब्रह्मचारी जी से अनशन त्यागने का आग्रह करे। परन्तु समिति के लोग हिचक रहे थे। प्रो. राम सिंह और स्वामी करपात्री जी जी अभी अनशन चलाने के पक्ष में थे और कह रहे थे कि हम जनता को क्या मुँह दिखलाएँगे? पूज्य गुरुजी ने आग्रह से कहा कि आप सारा दोष मेरे ऊपर डाल दें। मुझे जनता का कोई भय नहीं है और मुझे कभी वोट माँगने उसके पास जाना नहीं है। परन्तु उस समय अनशन स्थगित नहीं हुआ। पूज्य गुरुजी के आग्रह से महाराज जी ने जल अधिक मात्रा में, वह भी औटाया हुआ, जिसमें स्वाभाविक लवणों की मात्रा कुछ अधिक हो जाती है, लेना स्वीकार किया। जाते समय प्रेम का वह अनोखा दृश्य देखने को मिला। पूज्य ब्रह्मचारी जी ने गुरुजी से उनकी शाल माँगी और अपनी देते हुए कहा कि, 'तुम तो यहाँ जल्दी न आ पाओगे परन्तु इस चादर में

....

चीन का आक्रमण : भविष्यद्रष्टा की चेतावनी

१९५१ में समाचार पत्रों में लेख के द्वारा अपने विचार प्रकट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा था, ''चीन की प्रकृति विस्तारवादी है तथा निकट भविष्य में ही उसके भारत पर आक्रमण करने की संभावना है।'' इस चेतावनी का संदर्भ था चीन की तिब्बत में चल रही सैनिक कार्यवाही। इन दिनों श्री गुरुजी ने अनेक बार चेतावनी के रूप में कहा था कि ''भारत ने चीन को तिब्बत की भूमि भेंट कर भयानक भूल की है। जो गलती अंग्रेजों ने नहीं की, वह अदूरदर्शिता से भारतीय शासन ने की है।''

उन्हीं दिनों में पं. नेहरू चीन के प्रधानमंत्री चाऊ.एन.लाई. के हाथों में हाथ डालकर देशभर का प्रवास करते रहे और 'हिंदी-चीनी भाई-भाई'' व परस्पर सौहार्दपूर्ण भाईचारे के 'पंचशील' के नारे लगाते रहे। सामान्य जनमानस का भी इन नारों से अभिभूत हो जाना स्वाभाविक ही था। किन्तु उन्हीं दिनों चीन के आक्रमण की सूचना देकर देश में खतरे की घंटी बजाने वाले एकमात्र नेता थे श्री गुरुजी। बाद में १९६२ के नवम्बर मास में चीन ने अरुणाचल प्रदेश पर खुला आक्रमण करके ६४,००० वर्ग कि.मी. क्षेत्र को अपने हाथों में ले लिया। तब पं. नेहरू ने स्वीकार किया कि 'हम गफलत में पड़े थे'। परन्तु ऐसे समय पर भी श्री गुरुजी चुप नहीं बैठे। वे देश की जनता का मनोबल ऊँचा उठाने और सरकार की सब प्रकार की सहायता करने के लिए आह्वान करते रहे। उन्हीं दिनों गुरुजी ने देश की सुरक्षा की दृष्टि से एक और महत्त्वपूर्ण सूचना दी। सार्वजनिक तौर पर उन्होंने आह्वान किया कि भारत के लिए तुरन्त परमाणु बम बनाना परम आवश्यक है। किंतु दुर्भाग्य से उस सूचना की ओर ध्यान नहीं दिया अन्यथा अब तक चीन के भय से हम मुक्त हो सकते थे।

तुम्हारी सुवास से मैं तुम्हारा स्मरण कर लिया करूँगा और तुम्हारी निकटता का अनुभव कर लूँगा'। अश्रुपूर्ण नेत्रों से गुरुजी ने बिदाई ली। जाते समय मुझसे गुरुजी ने कहा कि दौरा और कार्यक्रम है। उसे पूरा करना है पर मेरा मन यहीं लगा रहेगा।

66 का कुम्भ पूज्य गुरुजी की अद्भुत संगठन कुशलता का एक विलक्षण रूप प्रस्तुत करने वाला रहा। विश्व हिन्दू परिषद् का एक अखिल भारतीय अधिवेशन प्रयाग कुम्भ के अवसर पर किया गया। पूर्ण देश से लगभग 15,000 प्रतिनिधियों के अतिरिक्त विदेशों से भी हिन्दुओं के प्रतिनिधि उपस्थित थे। एक ही मंच पर शंकराचार्य, महामण्डलेश्वर, सिख, जैन, बौद्ध आदि अनेक सम्प्रदायों के प्रमुख उपस्थित थे। हिन्दू समाज की विभिन्नता में भी एकता का विलक्षण दृश्य था। पुरी के शंकराचार्य महाराज किसी कारण रुष्ट होकर मंच से कुछ विचित्र बोलने लगे। सभा में विरोध की आवाज गूँजने लगी। लगा सारा किया–कराया एकता का प्रयत्न इस संघर्ष में समाप्त न हो जाए। पूज्य गुरुजी ने मंच पर आकर सभी को शान्त किया और 2–3 घण्टे में ही द्वारिका के शंकराचार्य तथा अपने प्रयत्नों से पुनः पुरी के शंकराचार्य जी को मंच पर लाकर सामंजस्य का वायुमण्डल उत्पन्न करा दिया। सभी के मुँह से यही सुनाई देता था कि आज गुरुजी न होते तो यह संघर्ष होकर रहता। अपनी छोटी–छोटी बातों को लेकर हिन्दू समाज लड़ने का आदी बन गया है। अपनी नाक ऊँची रहे चाहे समाज और देश का कुछ भी हो जाए, उसी में गुरुजी ने उस कौशल्य का परिचय दिया कि जिसमें बड़े–बड़े आचार्य मिलकर अपने समाज के उत्थान का संकल्प लेकर अधिवेशन से गए। सारा प्रबन्ध और प्रयत्न तो पूज्य गुरुजी की प्रेरणा से संघ और विश्व हिन्दू परिषद् के कार्यकर्ताओं ने किया ही था, परन्तु सम्मेलन की सफलता के लिए यदि कोई एक व्यक्ति कारणीभूत था तो वे थे श्री गुरुजी – ऐसा सारे कुम्भ का वायुमण्डल बना।

पूज्य ब्रह्मचारी जी की श्रीगुरुजी को एक बार श्री बद्रीनाथ ले जाने की बड़ी इच्छा थी। इसका सहारा मिला गुरुजी के अभिन्न मित्र और गुरु भाई स्वामी अमूर्तानन्द जी द्वारा। उन्होंने भी मुझे कई बार बद्री–केदार की यात्रा की योजना बनाने के लिए कहा। परन्तु गुरुजी वहाँ इच्छा होने पर भी क्यों जाने लगे? उसके लिए कोई कारण भी चाहिए था। साधारणतः तो जहाँ शाखा है, स्वयंसेवक हैं, उनसे मिलने के लिए ही उनका जाना होता था। महाराज जी ने एक मार्ग निकाला। बद्रीनाथ में लोगों के ठहरने के लिए धर्मशालाओं का अभाव है। पूज्य ब्रह्मचारी जी ने संकीर्तन भवन की ओर से वहाँ एक भवन निर्माण करवाया। भवन की पूर्ति पर उन्होंने उसका उद्घाटन श्री गुरुजी के द्वारा करवाने का सोचा और उसका आग्रहपूर्वक निमन्त्रण जुलाई में ही गुरुजी के पास भिजवाया। उधर स्वामी अमूर्तानन्दजी ने भी गुरुजी से इस कार्यक्रम के निमित्त सितम्बर मास में एक सप्ताह निकालने के लिए आग्रह किया। जुलाई की बैठक में जब पूज्य गुरुजी का वर्ष भर के दौरे का कार्यक्रम बनता था, मैंने भी सात दिन छुड़वाकर रखे। बद्री–केदार की यात्रा के लिए या तो अप्रैल, मई, जून के मास उपयोगी रहते

हैं या फिर वर्षा के बाद सितम्बर–अक्टूबर के। संघ शिक्षा वर्ग के कार्यक्रम होने के कारण पूज्य गुरुजी का गर्मी के महीनों में तो वहाँ जाना सम्भव ही नहीं था, अतः यह योजना सितम्बर में बनाई गयी। पूज्य गुरुजी, डा. आबा जी थत्ते, अमिताभ महाराज (अमूर्तानन्द जी) व लाला हंसराज जी तथा हम सब व उस क्षेत्र के तरुण कार्यकर्ता साथ थे। पूज्य महाराज जी वृन्दावन से अपनी मोटर में से अलग से आए और हम लोगों का मिलन ऋषिकेश में हुआ। वैसे मार्ग में हरिद्वार में एक विश्व हिन्दू परिषद् की बैठक हुई तथा ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द जी की (दैवी जीवन संस्थान) में पूज्य गुरुजी का वहाँ के आश्रमवासियों के बीच एक प्रवचन हुआ। उसी दिन सायंकाल तक श्रीनगर पहुँचना था, जहाँ स्वयंसेवकों का एक छोटा–सा कार्यक्रम भी आयोजित था। हमारे साथ एक ऐम्बेसडर, एक जीप तथा पूज्य गुरुजी के लिए देहरादून के संघचालक जी की एक बड़ी इम्पाला कार थी। परन्तु इम्पाला कार ने तो चढ़ाई पर अपना दम तोड़ना प्रारम्भ कर दिया। अभी असली चढ़ाई तो प्रारम्भ ही नहीं हुई थी। इसलिए लगा कि यह विदेशी कार स्वदेशी तीर्थस्थान पर जाना नहीं चाहती है और उसके यात्रियों को शेष दोनों कारों में बाँट कर तथा मैं पूज्य महाराज जी की कार में बैठकर श्रीनगर पहुँचे।

> एक का क्षेत्र भक्तिमार्ग से लोगों का हृदय शुद्ध करते हुए उनका नैतिक और सामाजिक स्तर उठाने का तथा दूसरे का हिन्दू समाज को संगठित कर उसे साहसी, पराक्रमी, क्रियाशील बनाने का था। परन्तु हिन्दू और हिन्दुस्थान के मान-बिन्दुओं की रक्षा दोनों का मिलन बिन्दु था और अपने देश, समाज और धर्म को उठाने के मार्ग भले ही अलग लगें, उद्देश्य तो एक ही था।

केदारनाथ जी का रास्ता अभी पूरा बना नहीं था। अन्तिम 10–12 मील पैदल, घोड़ा या डाँडी के द्वारा ही तय हो सकता था। केदारनाथ जी की अन्तिम चढ़ाई भी बड़ी भयंकर है – 5,000 फुट ऊपर चढ़ना पड़ता है। गुरुजी को पैदल चलने का अभ्यास तो इधर कम ही हो गया था। जिसको घोड़े पर चढ़ने का काम न पड़ता हो, उसको घोड़ा भी पैदल चलने सरीखी ही थकावट देता है। कमर, जाँघ, कन्धे दो–चार मील में ही दर्द करने लगते हैं। पूज्य गुरुजी को हम लोग डाँडी में ले जाना चाहते थे परन्तु उन्होंने मनुष्य के ऊपर चलने वाले वाहन पर चढ़ने से पूर्णतः मना कर दिया था। उनकी इच्छा तो पैदल चलने की ही थी, यद्यपि हम जानते थे कि वह कितना कठिन है। हम लोगों ने पूज्य ब्रह्मचारी जी से कहा कि गुरुजी को डाँडी पर चढ़ने के लिए तैयार करें। शास्त्र से कोई बात निकालकर उनको सिद्ध करें कि मनुष्य के कन्धों पर चलने में भी कोई आपत्ति नहीं है। हम सबसे तो गुरुजी ने स्पष्ट कह दिया था कि मनुष्य के कन्धों पर चलने के लिए तो उन्होंने केवल अन्तिम यात्रा का समय निश्चित किया है, परन्तु महाराज जी के कहने पर उन्होंने इतना स्वीकार किया कि वहाँ पहुँच कर देखा जाएगा। पर केदारनाथ जाने का तो प्रसंग ही नहीं आया, क्योंकि रास्ते में वर्षा के कारण कई

स्थानों पर पहाड़ खिसक आया था और मार्ग अवरुद्ध हो गए थे। हमें रुद्रप्रयाग में ही दो दिन बद्रीनाथ के रास्ते के साफ होने के लिए रुकना पड़ा।

पहाड़ों पर सर्दी बहुत पड़ती है और पूज्य गुरुजी धोती छोड़कर अन्य कुछ पहनते नहीं। इसलिए सर्दी में उनको कष्ट न हो, यह सोच कर धोती के नीचे भी जो पहना जा सकता है, ऐसा एक सूती बुना हुआ पाजामा मैं लेता गया, परन्तु गुरुजी ने उसका भी कभी प्रयोग नहीं किया। मोजा व जूता भी साधारणतः गुरुजी पहनते नहीं थे। उसकी भी व्यवस्था की गई थी परन्तु उसका भी उपयोग नहीं हुआ। मेरे अतिशय आग्रह पर उन्होंने उत्तर दिया कि पहाड़ में अनेकों व्यक्ति बिना किसी जाड़े के वस्त्र के यदि काम चलाते हैं तो मुझे सर्दी से बचने के लिए इतने कपड़ों की क्या आवश्यकता है? गुरुजी चाय के शौकीन तो अवश्य थे परन्तु कई वर्षों से उन्होंने उसके साथ कुछ खाना छोड़ दिया था। न तो सायंकाल भोजन करते थे, न रात्रि में दूध लेते थे। दिन भर में केवल एक समय, वह भी अत्यल्प भोजन, उनको पहाड़ की सर्दी में कैसे शक्ति और गर्मी प्रदान करेगा, यह हम लोगों की चिन्ता का विषय था। इसलिए हम लोगों ने एक ओर तो कुछ मेवा तथा बादाम और मुनक्का से निर्मित कुछ लड्डू साथ ले लिए थे। मैंने उनसे कहा कि पहाड़ पर चाय के साथ कुछ लेना अत्यन्त आवश्यक है। एक दिन उनको आग्रहपूर्वक एक लड्डू भी खिलाया परन्तु यह कहकर कि यह मेरे दाँतों में चिपक जाता है, न तो उन्होंने आगे लड्डू ही लिया, न मेवा का ही प्रयोग किया। पूज्य महाराज जी, गुरुजी का शुद्ध घी के ऊपर आग्रह जानने के कारण विशेष रूप से मूँग के लड्डू बनाकर लाए थे। वे हम कार्यकर्ताओं को ही खाने पड़े। पूरे प्रवास में गुरुजी का वही पूर्ववत् एक बार भोजन का तथा शुद्ध चांय का ही प्रयोग बना रहा।

केदारनाथ जी की यात्रा स्थगित हो जाने के कारण श्री बद्रीनाथ क्षेत्र में तीन दिन रहने का विधान पूर्ण हुआ। अन्य कार्यक्रमों के साथ–साथ पूज्य गुरुजी 'माना' ग्राम गए जो भारत का सीमावर्ती अन्तिम ग्राम है और वहाँ के छोटे–छोटे सभी बच्चों को एकत्रित कर उनसे अपने देश व धर्म के विषय में प्रश्न पूछे तथा सभी को मिठाई देने की व्यवस्था करवाई। बद्रीनाथ में भी एक दिन वहाँ के सभी तीर्थपुरोहितों की बैठक हुई तथा उसमें गुरुजी ने सभी से यह पूछा कि वे अपने कर्मकाण्ड के विषय में कितना जानते हैं? गुरुजी ने उनसे आग्रह किया कि वे अपने कार्य को पूर्ण शास्त्रसम्मत रीति से करें और दक्षिणा में क्या मिलता है, इसका विचार न करें तभी हिन्दू समाज की श्रद्धाएँ बनी रह सकती हैं। बद्रीनाथ के रावल तो केरल के नम्बूद्री ब्राह्मण होते हैं। उन दिनों के रावल ने पूज्य गुरुजी का केरल में विद्यार्थी अवस्था में भाषण सुना था और उनका संघ से भी अच्छा परिचय था। उनके साथ भी गुरुजी का वार्तालाप तथा चायपान का कार्यक्रम हुआ। बद्रीनाथ के अन्य नागरिकों के साथ भी भेंट–वार्ता उन दिनों में हुई। सभी को गुरुजी ने अपने धर्म पर विश्वास के साथ चलने की तथा सभी बन्धुओं के साथ स्नेह सम्बन्ध दृढ़ करने का आग्रह किया।

उन्हीं दिनों पूज्य ब्रह्मचारी जी के द्वारा कथा सुनने का गुरुजी को अवसर प्राप्त हुआ। महाराज जी के शब्दों में "जैसा संघ वालों को प्रतिदिन शाखा लगाए बिना, प्रार्थना किये बिना चैन नहीं पड़ता वैसे ही साधु–सन्तों को भगवान् के गुणगान को सुने– सुनाए बिना चैन कहाँ? दोपहर तीन बजे पूज्य ब्रह्मचारी जी प्रसाद लेकर उपस्थित होते थे और फिर घंटे–डेढ़ घंटे उनकी रसमयी वाणी से कथा सुनने का हम सभी को आनन्द प्राप्त होता था। महाराज जी तो कथा इतनी तन्मयता के साथ कहते हैं, पात्रों के सारे भाव–भावनाएँ उनमें भी इतनी पूर्णता से व्यक्त होती हैं कि सुनने वाला उस कथा गंगा में पूर्णतः बह जाता है। प्रेमाश्रुपूर्ण आँखों से गुरुजी भी उस कथा को सुनते थे और जब कथा समाप्त होती थी तो सभी एक तृप्तता का अनुभव करते थे। बद्रीनाथ यात्रा का यह कथा–प्रसंग एक अभूतपूर्व अंग था। एक दिन मुझसे हँसते हुए गुरुजी ने कहा कि अब यहाँ से जल्दी ही जाना चाहिए नहीं तो हिमालय की यह शान्ति, ब्रह्मचारी जी की यह कथा कहीं मुझे यहीं रह जाने के लिए विवश न कर दे। ऐसे प्रसंगों पर प्रकट हो जाता था कि यद्यपि गुरुजी ने डाक्टर जी के कहने पर अपना अध्यात्म का प्रथम प्रेम छोड़कर समाज–सेवा का व्रत अपनाया था, परन्तु फिर भी वह प्रथम आकर्षण प्रबल हो उठता था और उसे प्रयत्नपूर्वक ही गुरुजी दबाकर रखते थे।

इन दोनों महापुरुषों का अन्तिम मिलन 28 फरवरी, 1973 को काशी में हुआ। जनवरी मास के अन्त में जब गुरुजी उत्तर प्रदेश के दौरे पर आए थे, तब उनका स्वास्थ्य खराब लगा। वे स्वास्थ्य के चेक–अप के लिए बम्बई गए और यहाँ हम लोगों ने प्रयाग के भृगु संहिता जानने वाले पंडित जी से प्रश्न पूछा तो बड़ा ही अशुभ उत्तर मिला। कुण्डली दिखाने पर एक यज्ञ के आयोजन का विधान था। अतएव महारुद्र यज्ञ काशी में करवाया गया। पूज्य गुरुजी का जन्म दिवस इस वर्ष 28 फरवरी को

न हिन्दूः पतितो भवेत्

१९६६ में प्रयाग में सम्पन्न कुंभ मेले का मंगल अवसर एक और दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रहा। शताब्दियों से हिन्दू समाज के मन में बनी हुई विकृत धारणा - एक बार हिन्दू धर्म छोड़कर यदि कोई मुसलमान या ईसाई बनता है, तो उसका फिर से हिन्दू धर्म में प्रवेश वर्ज्य है - के कारण मतांतरण का एकतरफा प्रवाह चलता रहा और हिन्दू संख्या घटती रही, अहिन्दू संख्या बढ़ती रही। प्रयाग सम्मेलन में विश्व हिन्दू परिषद् के मंच से शंकराचार्य सहित सभी सम्प्रदायों के धर्माचार्यों द्वारा एक मत से घोषणा हुई - 'अहिन्दुओं को वापस अपने मूल हिन्दू धर्म में लाना हिन्दुओं का पवित्र कर्तव्य है।' उसी समय पर 'शुद्धि' के स्थान पर 'परावर्तन' शब्द प्रचलित हुआ। आगे चलकर पू. पेजावर श्री ने इसे -'न हिन्दुः पतितो भवेत्' - मंत्र का रूप प्रदान किया याने हिन्दू कभी पतित नहीं होता। मुसलमान या ईसाई बनने पर हिन्दू सदा के लिए भ्रष्ट, पतित हो जाता है; उसको अपने धर्म में वापस नहीं लाया जा सकता - इस भ्रम को दूर करना ही इस मंत्र का उद्देश्य है।

पड़ता था। उस दिन यज्ञ की पूर्णाहुति थी। पूज्य गुरुजी कलकत्ता से उसके लिए आए और प्रयाग में पूज्य ब्रह्मचारी जी भी उसके लिए पहुँचे। महाराज जी इसके पूर्व पाँच–छह दिन से फ्लू से पीड़ित थे। उपवास कर रखने के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गए थे, परन्तु फिर भी पहुँचे और इस बार पूज्य गुरुजी के लिए भेंट में अन्य वस्तुओं के साथ एक लंगोटी भी ले गए। मानो सभी कामों से मुक्ति की उनको अनुमति मिल गई।

पूज्य गुरुजी ने मार्च मास में असम और बिहार का दौरा बड़ी अस्वस्थता में पूरा किया और मार्च के अन्त में प्रतिनिधि सभा में उनका अन्तिम भाषण हुआ। बीच में कुछ स्वास्थ्य सुधार सा लगा परन्तु शायद वह हम लोगों को समाधान देने के लिए ही था। 5 जून को उनकी ज्योति उनके नश्वर शरीर को छोड़ चली। यह सत्य है कि वह आज करोड़ों देशवासियों के ह्रदयों में जल रही है।

——लेखक संघ के चतुर्थ सरसंघचालक;
प्रयाग विश्वविद्यालय में विज्ञान के प्रोफेसर

शत-शत वंदन!

शत-शत वंदन! शत-शत प्रणाम!
तीर्थों की पवित्रता जिसके आचरण में
पर्वों और व्रतों की महनीयता अंतःकरण में
सादगी, संस्कृति और सभ्यता जिसके अलंकरण में
क्रांति और प्रगतिशीलता जिसके युग-चरण में
मैंने मनुष्य की आकृति में, उस देवता को-
देखा है, सुना है, पढ़ा है, गुना है!
मठ-रहित संन्यासी,
जन-जन के कल्याण के लिए निरंतर प्रवासी
जमदग्नि, वसिष्ठ, पराशर की शेष यादगार
दीप्त मुखमंडल पर धार्मिक तेज निरहंकार
दुर्बल शरीर और देश-जाति-धर्म की रक्षा का
दुस्सह भार
आँखों की किरणों में असीम स्नेह और प्यार
आँधियों में भी जिसका दीप जगमगाता रहा
पत्थरों को तोड़ जो निर्झर की तरह गाता रहा
किसी तरु के नीचे विश्राम, हराम!
जिसकी जिंदगी चलती रही अविराम
उस परम तपस्वी गुरुजी के चरणों में
शत-शत वंदन! शत-शत प्रणाम!

-श्याम नारायण पांडेय

'स्वतंत्र भारत' में संघ की भूमिका

देश विभाजन होकर पाक के स्वतंत्र होने पर हिंदू-मुस्लिम झगड़ों और दंगों का मूल कारण ही नहीं रहा तो संघ की क्या आवश्यकता रह गई है?'' ऐसे प्रश्नों की - १९४८ के बाद लोगों में जोरदार चर्चा चल पड़ी थी। श्री गुरुजी ने इस विषय में स्पष्ट रूप से मार्गदर्शन करते हुए कहा - 'किसी के साथ संघर्ष करने अथवा संघर्ष का प्रतिकार करने के लिए संघ खड़ा नहीं हुआ। राष्ट्रीय चारिय का निर्माण करना संघ का प्रमुख कार्य है। .... यदि मोहम्मद पैगंबर साहब का जन्म ही नहीं होता और आज हिन्दू समाज जिस प्रकार असंघटित स्थिति में है, उसी स्थिति में रहता तब भी संघ का हिन्दू संगठन का कार्य अनिवार्य था।''

वह प्रकाश

20 जून 1940, नागपुर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक पूज्य डाक्टर केशवराव हेडगेवार की अस्वस्थता विषम स्थिति को पहुँची है। उन्हें भास होने लगा है कि अंतिम क्षण आ रहे हैं। उन्होंने गुरुजी तथा संघ के अन्य प्रमुखों को अपनी शय्या के पास बुलाया और गुरुजी को सम्बोधित कर ***'अब से संघ का सारा उत्तरदायित्व आपको ग्रहण करना होगा'*** कहते हुए एक ही वाक्य में समाप्त कर दिया। इसके अगले दिन उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।


हो. वे. शेषाद्रि

इस बात के पश्चात् लगभग 33 वर्ष व्यतीत हो गए। तदुपरान्त 6 जून 1973 को सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि का आगमन हुआ है, परन्तु नागपुर का रेशमबाग मैदान प्रकाशित हो रहा है। वह कौन–सा प्रकाश है?

साक्षीभूत ज्वाला

डा. हेडगेवार जी के समाधिस्थल पर उनका स्मृतिमंदिर है। उसमें उनकी पूर्णाकृति की भव्य प्रतिमा है। वे पूर्व दिशा की ओर एकटक देखते हुए बैठे हैं। प्रत्येक दिन प्रातः उषःकालीन स्वर्णकिरणों को निहारने वाले उनके नेत्र आज रात्रि के समय वही स्वर्ण किरणें देख रहे हैं। वह कौन–सा प्रकाश है? वह एक चिता की ज्वाला है। डा. हेडगेवार जी ने संघ का कार्यभार जिन्हें सौंपा था, उन श्री गुरुजी की चिता की ज्वाला है वह। डा. हेडगेवार जी द्वारा सौंपे गए कार्य की सिद्धि हेतु अपनी संपूर्ण आयु यज्ञकुंड के समान लगातार जलाकर अब श्री गुरुजी अपनी जो पूर्णाहुति दे चुके हैं, उसकी साक्षीभूत ज्वाला है यह! ध्येय सिद्धि के अपने जीवन–यज्ञ में उनके द्वारा दी गई पूर्णाहुति से प्रज्ज्वलित ज्वाला का प्रकाश है वह! उस रात को दिन के रूप में परिवर्तन करने वाला स्वर्ण प्रकाश है वह! उस दिन 6 जून को रेशमबाग मैदान में मात्र चमका हुआ एक प्रकाश नहीं है वह। उस प्रकाश की प्रखरता अपूर्व है, अपार है। उस प्रकाश का सामर्थ्य इतना है कि वह दूरी और काल की सीमा को पार कर सकता है। केवल चंदन की लकड़ियों को लगी ज्वाला का ही नहीं, अपितु 67 वर्षों की आयु के अखंड तप की अग्नि का प्रकाश है वह!

अनोखा दृश्य

उस तप का स्वरूप क्या है? किस कार्य की सिद्धि के लिए वह तप चला? स्वयं के लिए स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से? मोक्ष सिद्धि के लिए? आत्म साक्षात्कार के लिए? नहीं, नहीं! इनमें से किसी के लिए भी नहीं। भारतीय जनता को इस लोक में ही स्वर्गतुल्य सुख प्राप्ति की कामना से किया गया तप है वह। आज हमारे राष्ट्र पर आच्छादित सैकड़ों समस्याओं व संकटों से राष्ट्र की मुक्ति हेतु किया गया तप है वह! आत्मविस्मृति तथा आत्महीनता की भावना अंधकार में छटपटा रही हमारी पीढ़ी को अपने राष्ट्रीय ध्येय का वास्तविक ज्ञान कराने हेतु किया गया तप है वह! राष्ट्रीय आत्म साक्षात्कार के लिए किया गया तप है वह!

प्राण प्रतिष्ठापना

पूज्य डा. हेडगेवार जी ने सन् 1925 की

विजयादशमी को नागपुर में संघ का बीज बोया। देश के पुनरुत्थान के लिए 'हिन्दू संगठन' का बीजमंत्र दिया। उस मंत्र की सिद्धि के लिए एकनिष्ठ वीरव्रतियों का एक समुदाय गठित किया। मंत्र–सिद्धि की एक परिणामकारी पद्धति भी उन्होंने प्रदान की। पन्द्रह वर्षों तक अपने जीवन की संपूर्ण शक्ति को उँडेल कर उस मंत्र की प्राण प्रतिष्ठापना भी की। शरीर त्यागने से पूर्व अपने हाथ के हिन्दू संगठन के ध्येय मंत्र की ज्योति को भावी नेता श्री गुरुजी के हाथों में सौंपकर वे चले गए। 'हिन्दू संगठन' शब्द के दो भाग हैं। पहला है 'हिन्दू'। वह जैसे हमारा समाजसूचक शब्द है, वैसे ही हमारे राष्ट्रीय ध्येय का सूचक भी है। श्री गुरुजी की जीवन–साधना का सबसे प्रमुख पहलू है – जनमानस में हमारे राष्ट्रीय ध्येय को ग्रसित करने वाले ग्रहण को दूर करने के लिए उनके द्वारा की गई प्रभावकारी साधना।

राष्ट्रीयता का सिंहगर्जन

हिन्दुत्व के ध्येय मंत्र की उपासना किए बिना यह आशा करना कि भारत पुनः विश्व के लिए उदात्त मानवीय आदर्शों का, आध्यात्मिक संस्कृति का गुरु बनकर चमकेगा, मृग–मरीचिका का पीछा करना ही है। इसीलिए श्री गुरुजी ने एकाग्रनिष्ठा से इसकी उपासना अपनाई।
उस दिन जब डाक्टर हेडगेवार जी ने हिन्दू संगठन का ध्येयमंत्र दिया, राष्ट्रजीवन के किसी भी क्षेत्र में हिन्दुत्व की छाया नहीं दिखाई देती थी। सब ओर हिंदुत्व के प्रति घृणा व धिक्कार की भावना ही व्याप्त थी। 'हिंदू' शब्द से नाक भौं सिकोड़ने वाले आत्मक्लैब्य का शिकार था हमारा जनमानस। परंतु आज वह परिस्थिति नहीं रही। विद्यार्थी, श्रम, शिक्षा, धर्म, राजनीति, साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में हिंदुत्व की सुगंध फैली हुई है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में सैंकड़ों, हजारों ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता प्रत्येक प्रांत में कार्यरत हैं। संपूर्ण राष्ट्रजीवन में इस भूमि की सत्य राष्ट्रीयता का सिंहगर्जन आज सर्वत्र प्रतिध्वनित है। अराष्ट्रीय वादों के नारों के मोहक आवरण उखड़ने लगे हैं। भारत पुनः अपने आत्मप्रकाश में सचमुच प्रकाशपूर्ण बन ऊपर उठ रहा है। 6 जून की संध्या को पूज्य डा. हेडगेवार जी के मुख मंडल को जिस चिताज्वाला के प्रकाश ने प्रज्ज्वलित किया, वह भारत के आत्मप्रकाश का प्रतिरूप है। श्री गुरुजी के 33 वर्षों के अखंड आत्मयज्ञ का अमृतमय प्रतिफल है।

'हिन्दू संगठन' शब्द में 'संगठन' का भाग उसका दूसरा अत्यंत मुख्य पहलू है। हिन्दू जनता को अपने राष्ट्रीय ध्येय के प्रखर ज्ञान से प्रेरणा पाने के अतिरिक्त अपनी सभी सामाजिक विघटन व विषमताओं को त्याग कर एक अखंड संगठित राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए उतना ही आवश्यक है।

दुर्भाग्यपूर्ण समय व्यतीत हो गया

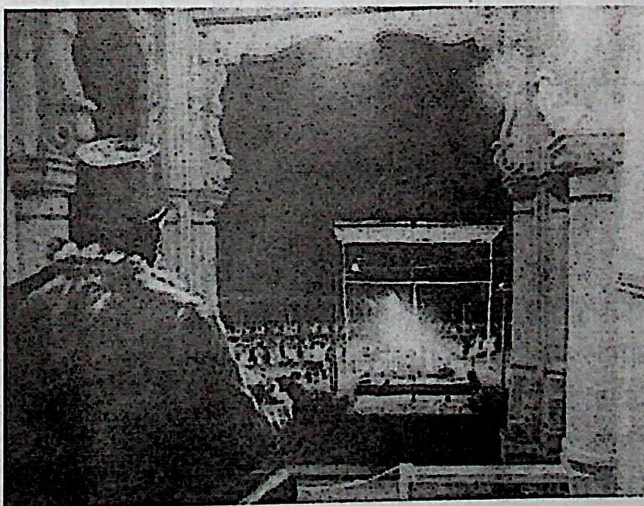
डा. हेडगेवार जी के शरीर त्याग से पहले इस हिन्दू संगठन का कार्य अधिकतया महाराष्ट्र व विदर्भ तक ही सीमित था। देश के अन्य भागों में उसका केवल प्रारंभ हुआ था। तब से अब तक श्री गुरुजी के नेतृत्व में संगठन वृहद् रूप में बढ़ा। संपूर्ण देशव्यापी हो गया। प्रत्येक प्रांत में सैकड़ों, हजारों केन्द्र फैल गए। हजारों, लाखों निष्ठावान कार्यकर्ताओं को एकत्र किया। महात्मा गाँधी जी ने राजनीति में प्रवेश करने के पश्चात् एक बात कही थी कि 'सर्व साधारण हिन्दू कायर है। एक साधारण मुसलमान गुंडा है।' परन्तु आज़ हिन्दू के संबंध में ऐसा कहने का साहस कोई

नहीं कर सकता। मार खाकर रोते बैठने का हिन्दू का वह समय कभी का बीत गया।

उषःकाल का प्रतिबिम्ब

6 जून की शाम को डा. हेडगेवार जी की प्रतिमा के सम्मुख प्रज्ज्वलित उस चिता ज्वाला का प्रकाश मानो हिन्दुओं के इस ऐक्य जीवन के उषःकाल का प्रतिबिंब है। श्री गुरुजी के जीवन यज्ञ से प्रसन्न होने वाले यज्ञपुरुष का महाप्रसाद है।

हम श्री गुरुजी के संबंध में जितना अधिक सोचते हैं, उतना अधिक स्पष्ट रूप से हमारे अंतःचक्षुओं के सम्मुख एक महोज्ज्वल राष्ट्रीय व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत होता है। वह ऐसा राष्ट्रस्वरूपी निर्मल उज्ज्वल चित्र है, जिस पर निजी, व्यक्तिगत किसी इच्छा–अनिच्छा, भावना–विकारों की छाया तक नहीं पड़ी। स्वामी रामतीर्थ ने एक परिपूर्ण देशभक्त का वर्णन करते हुए कहा था कि 'तुम देशभक्त बनना चाहते हो तो अपने देश व जनता के साथ प्रेम से समरस बन जाओ। तुम्हारे और तुम्हारी जनता के बीच तुम्हारे व्यक्तित्व की अलग छाया भी न पड़े... मैं ही यह देश हूँ, मैं ही यह संपूर्ण भारत हूँ ऐसा चिंतन करो... ओ! मेरा कद कितना भव्य है। मैं चलूँ तो भारत ही चलता है। मेरा स्वर ही भारत का स्वर है। मेरी साँस ही भारत की साँस है। मैं ही भारत हूँ। मैं ही शंकर हूँ। यही सच्चा वेदांत है। यही सच्ची देशभक्ति है।'



श्री गुरुजी का जीवन मानो इस आदर्श का रक्त व माँस से भरा सजीव हृदय था।

कोई भी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याएँ घिरी हों, उन सब के मध्य भारत की एकात्मकता के प्रकाशस्तंभ के रूप में श्री गुरुजी की वाणी मुखरित होती थी। श्री विनोबा भावे ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए इसी बात पर बल देकर कहा कि 'श्री गुरुजी का राष्ट्रभाव, अखिल भारतीय दृष्टि विशाल है तथा अध्यात्मनिष्ठा गहरी है।' श्री गुरुजी को अपना प्रतिस्पर्द्धी समझने वाले राजनीतिक नेताओं ने भी अपने संवेदना संदेश में यह बातें मुक्त मन से कहीं। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा : "अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा प्रखर जीवननिष्ठा से श्री गुरुजी ने राष्ट्र जीवन में आदर का स्थान पाया था।' इसमें भी श्री गुरुजी के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की आभा ही प्रतिबिंबित है।"

अमूल्य देन

जनता को एकत्रित करने की, रूपित करने की उनकी असदृश संगठन कुशलता राष्ट्रीय जीवन के साथ समरस उनके व्यक्तित्व में व्याप्त एक और अद्भुत बुद्धि परख थी। स्वामी विवेकानंद अपने देह–त्याग के पूर्व भविष्य का एक सुंदर चित्र खींच गए– 'और भी अनेक विवेकानंद जन्म लेंगे।' उस भव्य स्वप्न को साकार करने में श्री गुरुजी ने जो उज्ज्वल

सफलता प्राप्त की, उसने श्री विवेकानंद की आत्मा को भी अपार गर्व प्रदान किया होगा। विवेकानन्द के जीवन के अग्निकण के समान सहस्रों तेजस्वी राष्ट्रसमर्पित नवयुवकों को गढ़ना राष्ट्रमाता को श्री गुरुजी द्वारा समर्पित सर्वाधिक अमूल्य देन है।

परमोच्च साधना

किसी महापुरुष की सफलता का मूल्यांकन करने के लिए दो दृष्टियों से देखना होगा। पहली है उसके व्यक्तिगत सद्गुण, जीवनादर्श, उसके द्वारा स्थापित संस्था, रचित साहित्य इत्यादि। दूसरी इससे भी मुख्य है, उसके पश्चात् भी उन्हीं आदर्शों को जारी रखने वाले निष्ठावान–प्रज्ञावान कार्यकर्ताओं की परंपरा। इस दूसरी दृष्टि से भी हाल की शताब्दियों में, प्रायः सारे विश्व में गुरुजी की कार्यसिद्धि अद्वितीय है, इसमें संदेह नहीं। यह गुरुजी की महान सिद्धियों के उत्तुंग श्रृंग पर स्थित स्वर्णकलश के समान परमोच्च साधना है। श्री गुरुजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अनेक स्थानों पर, अनेक दलों के नेताओं ने वर्णन किया है 'गाँधीजी के पश्चात् उसी स्तर पर भारत के नभ मंडल को प्रकाशवान करने वाले नेता हैं श्री गुरुजी।'

इस दृष्टि से श्री गुरुजी की जीवन सिद्धियाँ क्या हैं? गाँधी जी ने विदेशियों की राजनीतिक दासता को उखाड़ फेंकने के स्वातंत्र्य युद्ध का बिगुल बजाया, पर राजनीतिक दासता से मुक्त होने पर भी राष्ट्र–जीवन पर मानसिक दासता छाई हुई थी। उसके विरोध में श्री गुरुजी ने स्वातंत्र्य संग्राम का बिगुल बजाया। इस कार्य की सफलता के लिए उन्होंने राजनीति से परे, परिशुद्ध राष्ट्रीय संस्कृति की निष्ठा को जनजीवन में ढालने के अत्यन्त श्रमसाध्य आह्वाान को अपनाया।

अपने पश्चात् भी यही कार्य अविरत रूप से चल सके ऐसी सफल परंपरा का निर्माण करना श्री गुरुजी की एक और महान सिद्धि है। डा. हेडगेवार जी ने असाधारण दूरदर्शिता से ध्येयनिष्ठ व्यक्तियों के निर्माण का, राष्ट्रीय शील संवर्धन का जो विधायक कार्य प्रारंभ किया, उसी को श्री गुरुजी ने देशव्यापी बनाया। सत्ता, कीर्ति, प्रसिद्धि, प्रचार, धन, स्थान–मान, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा आदि स्वार्थ के कीड़ों से मुक्त–पवित्र, शील तथा समर्पण के वातावरण में अपने सहयोगियों के जीवन–कमलों को उन्होंने विकसित किया।

चिर प्रकाश है वह

हृदयस्पर्शी भावनाओं का यह ऐसा प्रकाश है, जिससे लगता है कि श्री गुरुजी अपने जीवन की सम्पूर्ण सफलताओं का भोग डा. हेडगेवार जी को चढ़ा रहे हों। अपनी चिता–ज्वाला के प्रकाश से अपने नेता की प्रतिमा के मुखमंडल को ही नहीं, अपितु उस नेता के अंतःकरण को भी आनंद और गर्व से प्रकाशित करने वाला प्रकाश है वह! इसके अतिरिक्त अपने इस परमप्रिय हिन्दू देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए तड़प रहे प्रत्येक हृदय को भी चिरकाल तक प्रकाशित करने वाला प्रकाश है वह! सदा–सर्वदा अपनी परंपरा को विकसित करते हुए, नए–नए हृदयों को प्रकाशित करते हुए भविष्य में राष्ट्रजीवन के नवीन दिन को सम्पूर्ण प्रकाश के साथ प्रकाशित करने वाला चिर प्रकाश है वह!

–लेखक संघ के सरकार्यवाह रहे

वे सफेद कपड़ों में एक संत थे - पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य

लीक बनकर ज्योति की वह रह गया है

एक दीपक बढ़ गया है ....
बुद्धि कुंठित, हृदय विजड़ित वेदना से भर गया है।

धमनियों में रक्त का संबंध करुणा से उमड़कर,
और रह-रह शोक के आवेग का गर्जन घुमड़कर;
अश्रु वह बन धार गहरी
साँस भी स्तब्ध, ठहरी-
कर रही श्रद्धा-समर्पित, लीक बनकर ज्योति की वह रह गया है।

दीर्घ-युग तक दासता की विवशताएँ दूर करता,
ध्रुव-डगर पर कोटि-कदमों में अटल-विश्वास भरता,
स्नेह का कण-कण लुटाता,
ढल चली संभ्रम-निशा लख, सांद्र घन-सा वह स्वयं भी ढल गया है।

मनुज क्या? वह धर्म ही थे, कर्म में संन्यास भरकर,
वीतरागी मुनि अमल-अनुराग, अमृत-प्यास भरकर,

सुमन-दल कर स्नेह-सिंचित,
माँ चरण में अर्घ्य-अर्पित,
कुशल माली मुक्त-माधव, वेदिका पर स्वयं ही अब चढ़ गया है।

बुझ गई है चमक लेकिन नयन-मन में चिति समाई,
वीर-व्रत बन ध्येय-निष्ठा घटक घट-घट में बसाई,
भर त्वरा को युग-चरण में,
अमित ऊर्जा स्वेद-कण में,
मूक-वाणी, शब्द-अनहद, संगठन का हृदय-स्पंदन बन गया है।
एक दीपक बढ़ गया है............

– डॉ. चंद्रकांत भारद्वाज

समष्टिमय जीवन

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

एक सज्जन ने, जो अपने–आपको संघ के विरोधी समझते हैं, कहा : "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक के नाते नहीं, बल्कि श्री माधवराव गोलवलकर के नाते श्री गुरुजी के व्यक्तित्व में मेरी श्रद्धा है।" उनका कथन कोई अनूठा नहीं, क्योंकि इस प्रकार का विचार करने वाले बहुत से हैं। एक समय वह भी था (सन् 1948 में) जब बड़ों–बड़ों ने यह कहा कि 'संघ और संघ के स्वयंसेवक तो अच्छे है, किन्तु उनके नेता और संचालक उन्हें गलत दिशा की ओर ले जा रहे हैं।' अर्थात् दोनों प्रकार के व्यक्तियों की भावनाओं में अंतर हो सकता है, किन्तु विचारों की भूमिका में नहीं। उनके अनुसार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक और श्री माधवराव गोलवलकर दो व्यक्ति हैं। मेरे अनुसार वे दोनों को ही नहीं समझ पाए, न तो संघ को और न श्री गुरुजी को।

महानता का रहस्य

मैं जब यह कहता हूँ कि श्री गुरुजी का व्यक्तित्व संघ के सरसंघचालक से पृथक् कुछ भी नहीं, तो मेरा यह अर्थ नहीं कि उनमें महान् विभूतिमत्व का अभाव है। संघ के सरसंघचालक बनने पर उन्होंने कहा था कि 'यह तो विक्रमादित्य का आसन है, इस पर बैठकर गडरिये का लड़का भी न्याय करेगा।' विनय के साथ उन्होंने अपनी तुलना गडरिये के लड़के से की। किन्तु कोई यह समझने की भूल नहीं कर सकता कि उनकी अप्रतिम महत्ता सिंहासन के कारण नहीं, अपितु उनके अपने विक्रम के कारण है। हाँ, उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति और विक्रम कों संघ के साथ एकरूप कर दिया और वही है उनके जीवन का लक्ष्य और उनकी महानता का रहस्य।

अविस्मरणीय पाठ

सन् 1938 की बात है, संघ के आद्य सरसंघचालक परम पूजनीय डाक्टर हेडगेवार जीवित थे। उसी वर्ष श्री गुरुजी नागपुर में लगने वाले अधिकारी शिक्षण शिविर के सर्वाधिकारी थे। शिविर की समाप्ति के पूर्व उसमें भाग लेने वाले स्वयंसेवकों ने परम पूजनीय डाक्टर जी को भेंट करने के लिए निधि एकत्र की। प्रत्येक ने अपनी–अपनी श्रद्धा के अनुसार दिया। यह किसी को ज्ञात नहीं था कि किसने क्या दिया? एक स्वयंसेवक ने निधि में कुछ न देते हुए अपनी श्रद्धास्वरूप परम पूजनीय डाक्टर जी को घड़ी की सोने की चेन भेंट की। निधि और चेन भेंट करने का कार्यक्रम हुआ। हम लोग अपने मन में उस स्वयंसेवक की प्रशंसा कर रहे थे जिसने त्याग करके वह सोने की चेन भेंट की। हमारे सम्मुख वही उस दिन का हीरो था। सर्वाधिकारी के नाते श्रीगुरुजी समारोप भाषण के निमित्त खड़े हुए। अपने भाषण में उन्होंने सोने की चेन का उल्लेख करते हुए कहा : "मैं मानता हूँ कि जिस स्वयंसेवक ने यह चेन भेंट की है, उसके मन में डाक्टर जी के प्रति बड़ा आदर, प्रेम एवं श्रद्धा है, किन्तु वह अभी पूरा स्वयंसेवक नहीं है, उसमें कहीं न कहीं उसका 'अहं' छिपा हुआ है। जो

निधि दी गई है, उसमें किसी का व्यक्तित्व पृथक नहीं, उस निधि में साथ न देते हुए अलग से देने के मूल में अपने व्यक्तित्व की पृथकता और अहंकार है।" श्री गुरुजी के ये शब्द सुन कर हम लोगों को एकदम धक्का लगा, किन्तु संघ का स्वयंसेवक बनने के लिए अपने व्यक्तित्व को संघ जीवन में कितना विलीन करना पड़ता है, इसका ऐसा पाठ मिल गया, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

समष्टि का हित-विचार

अपने सम्पूर्ण जीवन को संघ के साथ एकरूप करने का कहीं आदर्श मिल सकता है तो वह परम पूजनीय श्री गुरुजी के जीवन में। किसी ध्येय तथा कार्य के साथ तादात्म्य सरल नहीं और विशेषकर उस व्यक्ति के लिए, जो उस संस्था का सर्वप्रथम नेता हो। यदि किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख व्यष्टि और समष्टि में संघर्ष आ जाए या दिशा का संभ्रम उपस्थित हो जाए, तो वह समष्टि की भावनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं के प्रतीक अपने नेता की आज्ञा को सर्वमान्य कर सकता है, उसका मार्ग सरल है। किन्तु जिस व्यक्ति के ऊपर संपूर्ण कार्य के नेतृत्व की जिम्मेदारी हो, वह अपनी अंतरात्मा को छोड़कर और किससे प्रेरणा ले सकता है? जनतंत्र की प्रचलति पद्धतियाँ वहाँ निरुपयोगी सिद्ध होंगी। उनसे समष्टि की भावना और उसके हिताहित का पता नहीं चलता। सत्य न तो अनेक असत्यों अथवा अर्ध सत्यों का औसत है और न उनका योग। फिर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही तो सम्पूर्ण समष्टि नहीं, वह तो समष्टि का एक बिन्दु मात्र है। उन्हें तो सम्पूर्ण समाज का विचार करना होता है।

पूर्ण तादात्म्य

पूजनीय गुरुजी ने समष्टि का हित ही अपने सम्मुख रखकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संचालन किया है। कई बार वे लोग, जो या तो उन्हें समझ नहीं पाते अथवा समष्टि हित की अपेक्षा किसी छोटे हित को सम्मुख रख कर संघ की गतिविधि का संचालन चाहते हैं, वे श्री गुरुजी की दृढ़ता और सिद्धान्तों का आग्रह देखकर उन्हें अधिनायकवादी कह देते हैं, किन्तु वे उस मनोवृत्ति से कोसों दूर हैं। उनका अपना मत कुछ नहीं, संघ का मत ही उनका मत है और उनका मत ही संघ का मत होता है, क्योंकि उन्होंने पूर्ण तादात्म्य का अनुभव किया है।

अद्भुत विनम्रता और आत्मीयता

ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब व्यक्ति और संस्था की प्रतिष्ठा की चिंता न करते हुए उन्होंने राष्ट्र के हितों को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। सन् 1948 में जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा, उस समय यदि वे चाहते तो शासन की खुली अवज्ञा करके अपनी शक्ति का परिचय दे सकते थे, किन्तु उन्होंने संघ के कार्य का विसर्जन करके अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। प्रतिबंध उठने के पश्चात् स्थान–स्थान पर उनका भव्य स्वागत हुआ। दिल्ली में रामलीला मैदान पर जो सभा हुई, उसका आदि और अंत नहीं दिखता था। बड़े से बड़े संत के अहंकार को जगा देने के लिए वह दृश्य पर्याप्त था। जब श्री गुरुजी बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा "यदि अपना दांत जीभ काट ले तो मुक्का मारकर वह दांत नहीं तोड़ा जाता।" लोग चकित

रह गए। उन्होंने आशा की थी कि गुरुजी सरकार के अत्याचारों और अन्याय की निन्दा करते हुए खूब खरी–खोटी सुनाएँगे। किन्तु उस महापुरुष की गहराई को वे नाप नहीं पाए। वहाँ तो सबके लिए आत्मीयता ही है।

'मैं नहीं, तू ही'

यह आत्मीयता ही उनकी महानता और उनके प्रति व्यापक श्रद्धा का कारण है और उनकी महानता इसमें है कि वे इस आत्मीयता को लेकर चल सके हैं। गत वर्ष 'धर्मयुग' साप्ताहिक ने भारत के अनेक महापुरुषों के जीवन के ध्येयवाक्य छापे थे। पूजनीय श्री गुरुजी का ध्येयवाक्य सबसे छोटा किन्तु समर्पक था– 'मैं नहीं, तू ही।' इन चार शब्दों में श्री गुरुजी का संपूर्ण जीवन समाया हुआ है। यह 'तू' कौन है? संघ, समाज, ईश्वर – वे तीनों को एकरूप करके चलते हैं। तीनों की सेवा में विरोध नहीं, विसंगति नहीं। 'एकहि साधे सब सधे' के अनुसार वे संघ की साधना करके सबकी साधना में लगे हुए हैं। उनका जीवन ही साधना बन गया है।

स्थितप्रज्ञता

फलतः संघ के अतिरिक्त वे किसी चीज को नहीं पहचानते। उनकी ध्येयदृष्टि इतनी पैनी है कि लोगों की प्रशंसा और विरोध – दोनों में ही वे विचलित नहीं होते। संघ पर प्रतिबंध लगने के बाद जब कुप्रचार के कारण संघ को शैतान का दूसरा स्वरूप समझा जाता था, तब भी वे अपने ध्येय पर अविचल रहे और जब प्रतिबंध हटने के पश्चात् चारों ओर विशाल स्वागत समारोह हुए, वे उस हवा में नहीं बहे।

हम लोग समाचार–पत्र पढ़ रहे थे। आदि से अंत तक करीब–करीब सारा पत्र पढ़ डाला। इतने में पूजनीय श्री गुरुजी ने कमरे में प्रवेश किया और सहज भाव से पत्र उठाकर इधर–उधर निगाह डाली। सुर्खियाँ देखीं, पन्ने उल्टे और पत्र रख दिया। बातचीत शुरू हो गई। उसके दौरान संघ–संबंधी एक समाचार, जो उसी पत्र में छपा था, का जिक्र आ गया। 'परंतु वह समाचार है कहाँ?' मैंने पूछा। 'इसी अखबार में तो है' पूजनीय गुरुजी ने कहा। मैंने पूरा अखबार पढ़ा था, मुझे वह समाचार कहीं नहीं दिखा। अखबार को लेकर फिर पन्ने उल्टे, पर संघ का वहाँ कहीं नाम भी नहीं दिखा। गुरुजी ने मेरी हैरानी देखकर अखबार हाथ में लिया और बताया 'यह है वह समाचार।' बाजार भावों के पन्ने पर एक ओर वह छोटा–सा समाचार छपा था। 'कहाँ छाप दिया है। हम लोग क्या व्यापारी हैं, जो इस पन्ने पर निगाह जाती?' मैंने मन ही मन सोचा। दूसरे ही क्षण विचार आया 'पूजनीय गुरुजी भी तो व्यापारी नहीं, वे तो कोसों दूर हैं, मोल–तोल और भाव–ताव से। उनकी निगाह कैसे गई? और फिर अखबार भी मेरी तरह पूरा नहीं पढ़ा था, सुर्खियाँ ही इतनी थीं कि जितनी देर वह पत्र उनके हाथ में रहा, पूरी नहीं पढ़ी जा सकती थीं।'

हम देखते हैं, वे पढ़ते हैं

मैंने अपनी शंका रखी भी नहीं, पर शायद वे समझ गए। उन्होंने इतना ही कहा : 'भीड़ में भी माँ को अपना बच्चा दिख जाता है, कोलाहल में भी आत्मीयजनों के शब्द साफ समझ में आते हैं।' मेरी समझ में आ गया। उनकी वही आत्मीयता है, जिसके कारण वे उस समाचार को देख सके। अन्य देशों के ऐसे कितने ही समाचार उनकी

निगाह में आ जाते हैं, जबकि हम लोग नेताओं के वक्तव्य पढ़ते-पढ़ते ही समाचार-पत्रों को पी जाने की कोशिश तो करते हैं, किन्तु अनेक महत्त्वपूर्ण समाचारों को छोड़ जाते हैं। वे अक्सर कहते- 'मैं तो समाचार-पत्र नहीं पढ़ता। पर मैं कहूँगा कि वे (श्री गुरुजी) ही समाचार-पत्र पढ़ते हैं, हम लोग तो उन्हें देखते हैं और बहुत देर तक देखतें रहते हैं।

एकात्मता से उत्पन्न अचूक दृष्टि

एक बार उन्हें एक पुस्तक, जो हाल ही छप कर आई थी, दिखाई। पुस्तक उन्होंने हाथ में ली। इधर-उधर देखा और सहज ही एक जगह से खोला। एक वाक्य पढ़ते हुए पूछा : 'यह क्या लिखा है?' वहाँ गलती थी। मैंने उसे स्वीकार किया। उन्होंने फिर दूसरा पृष्ठ खोला और वहाँ भी ऐसी ही एक अशुद्धि निकल आई। पुस्तक मैंने ले ली। बाद में फिर से उसे आदि से अंत तक देखा। वही दो अशुद्धियाँ थीं। पूजनीय गुरुजी की निगाह बिना किसी प्रयास के उन अशुद्धियों पर ही कैसे गई? उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त नहीं थी और न यह कोई तुक्का था, जो लग गया। ऐसे और भी अनुभव आए हैं। कहना न होगा कि यह कार्य की लगन और एकात्मता है, जिसने उन्हें अचूक दृष्टि दी है। उसी दृष्टि के कारण वे प्रत्येक परिस्थिति में सत्य का दर्शन कर लेते तथा भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है, इसका भी आभास पा जाते हैं। आगे की बात कहने के कारण यदि गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया जाए, तो उनकी बातें बड़ी अटपटी-सी लगती हैं, किन्तु थोड़े ही दिनों में उनकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है।

सन् 1947 में उन्होंने भावात्मक राष्ट्रीयता पर बल दिया, एकात्मता की बात कही, राष्ट्रीय चारित्र्य की आवश्यकता बताई, राजनीति की मर्यादाओं का उल्लेख करते हुए सांस्कृतिक अधिष्ठान पर समाज के संगठन का संदेश दिया। पिछले आठ वर्षों ने उनके प्रत्येक कथन को सत्य सिद्ध किया है तथा प्रत्येक नई घटना उसे अधिकाधिक पुष्ट करती जा रही है। मैं तो निःसंकोच भाव से कहता हूँ कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों के बहुत से अगुआ होंगे, किन्तु जिसने संपूर्ण जीवन का पूर्णता के साथ आकलन किया और जो बिना किसी मोह या भय के एवं साहस के साथ उस सत्य का उच्चार कर सकता है, ऐसा एक व्यक्ति है और वह हैं- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधवराव गोलवलकर।

—लेखक एकात्म मानव दर्शन के प्रस्तोता;
भारतीय जनसंघ के अखिल भारतीय अध्यक्ष रहे।

जो सदन के सदस्य नहीं थे ऐसे एक प्रतिष्ठित व्यक्ति गोलवलकर अब नहीं रहे। वे विद्वान थे, शक्तिशाली आस्था वाले व्यक्ति थे। अपने प्रभावी व्यक्तित्व और विचारों के प्रति अटूट निष्ठा के कारण राष्ट्र जीवन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था।

-देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी

हिंदू संगठन, विश्व एकता और मानव कल्याण


कुप्प. सी. सुदर्शन

"हिन्दू समाज को सुसंगठित और चारित्र्यसंपन्न बनाने का जो लक्ष्य लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ चला है, वह विश्व की एकता और मानव कल्याण के लिए एक अनिवार्य पूर्वशर्त है।" ये शब्द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक पू. माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने, जिन्हें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1931–1934 तक के प्राध्यापक के कार्यकाल में वहाँ के छात्रवृन्द कृतज्ञतापूर्वक 'गुरुजी' कहकर संबोधित करते थे, कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए अपने एक भाषण में कहे थे। यहाँ प्रश्न यह खड़ा होता है कि जब दुनिया के सभी देश व विचारधाराएँ विश्व की एकता और मानव के कल्याण के लक्ष्य को लेकर चलने का दावा करती हैं तब हिन्दू समाज में ही वह कौन सी विशेषता है कि उसकी संघबद्धता उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक अनिवार्य शर्त मानी गई? और वह भी किसी ऐसे–वैसे व्यक्ति के द्वारा नहीं, बल्कि स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई व तत्कालीन रामकृष्ण मिशन और मठ के अध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्द द्वारा दीक्षा प्राप्त श्री गुरुजी द्वारा यह बात कही गई। उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के अध्यापक के नाते अध्यापन करते समय वहाँ के पुस्तकालय में विद्यमान अँग्रेजी साहित्य, संस्कृत साहित्य, पौर्व और पाश्चात्य दर्शन, गणित, अर्थशास्त्र, ज्योतिष आदि अनेक विषयों के ग्रंथों का अध्ययन कर डाला था जो उनकी अद्भुत स्मरणशक्ति के कारण उनके ज्ञानभंडार को अत्यंत संमृद्ध बनाने के कारण बन गए थे। ऐसा प्रतिभासम्पन्न आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति यदि रामकृष्ण मिशन में होता तो मिशन को एक नया विवेकानन्द प्राप्त हुआ होता। किन्तु बाबा अखंडानन्द जी ने अपनी देह त्यागने के कुछ ही दिनों पूर्व अपने पट्टशिष्य स्वामी अमूर्तानन्द जी से कहा था कि "उसे रामकृष्ण मिशन में मत रखना। वह तो डाक्टर हेडगेवार के साथ रहकर नर को ही नारायण मानकर उसकी सेवा करेगा।" ऐसे श्री गुरुजी के उपर्युक्त वाक्य के मथितार्थ पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है।

अधूरा पश्चिमी चिंतन

इस दृष्टि से जब हम गहराई से विचार करते हैं तो ध्यान में आता है कि विश्व के समस्त चिन्तकों और दार्शनिकों के समक्ष मुख्यतः तीन प्रश्न रहे हैं, जिनका उन लोगों ने अपनी–अपनी समझ और परिस्थिति के अनुसार उत्तर देने का प्रयत्न किया और उन प्रश्नों के विभिन्न उत्तरों के आधार पर ही विभिन्न देशों की जीवन दृष्टियाँ, जीवनादर्श तथा जीवनमूल्य विकसित हुए। वे तीन प्रश्न हैं–

1. मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा और मेरे अस्तित्व का प्रयोजन क्या है?
2. यह जगत् क्या है, कहाँ से आया है, कहाँ जाएगा और इसके अस्तित्व का प्रयोजन क्या है?

3. मेरा और इस जगत् का संबंध क्या है?

मोटे तौर पर ध्यान में आता है कि पहले प्रश्न का भारत के बाहर जितना परिपूर्ण विचार होना चाहिए था, नहीं हुआ। ग्रीस देश के साक्रेटिस सरीखे चिन्तकों ने तर्क–प्रधान बुद्धि को ही मनुष्य का प्रमुख लक्षण मानते हुए कहा कि मनुष्य तर्कशील प्राणी है। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस के गणितज्ञ रेने देकार्ते ने मन को ही सर्वोपरि मानकर मनुष्य को मननशील प्राणी माना। उसका यह वाक्य प्रसिद्ध है कि "मैं हूँ– इसका प्रमाण ही यह है कि मैं सोचता हूँ।" उन्नीसवीं सदी में जर्मन तत्त्वज्ञ कार्ल मार्क्स ने तत्कालीन विज्ञान के आधार पर माना कि अणु–परमाणु सृष्टि के मूल तत्व हैं और उन्हीं के परस्पर संघात से चेतनां नामक एक गुण पैदा होता है, जो कुछ काल तक रहता है और बाद में समाप्त हो जाता है और उसी स्थिति को मृत्यु कहते हैं। उसने मरणोत्तर जीवन का कोई अस्तित्व नहीं माना और इसीलिए मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं– रोटी, कपड़ा और मकान को ही सर्वप्रमुख माना।

> "हिन्दू समाज को सुसंगठित और चारित्र्यसंपन्न बनाने का जो लक्ष्य लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ चला है, वह विश्व की एकता और मानव कल्याण के लिए एक अनिवार्य पूर्वशर्त है।"
>
> –श्री गुरुजी

इस प्रकार पश्चिम के चिन्तकों ने मनुष्य को शरीर, मन या बुद्धि के साथ जोड़ा और ये तीनों चीजें ऐसी हैं जो हर मनुष्य में अलग–अलग हैं और मानव–एकता स्थापित करने में असमर्थ हैं। अतः पश्चिम में विकसित सभ्यता प्रतिस्पर्धात्मक है, जिसका मूलस्वर है 'आधिपत्य'। आज सौंदर्य स्पर्धा, शरीर सौष्ठव स्पर्धा, मानसिक क्षमता प्रतियोगिता, शरीर सामर्थ्य स्पर्धा, बौद्धिक श्रेष्ठत्व प्रतियोगिता आदि स्पर्धाओं का ही बोल–बाला है और इन स्पर्धाओं में जो जीतता है, वह सारी दुनिया में अपने श्रेष्ठत्व का ढिंढोरा पीटता घूमता है और सारे संवाद–माध्यम उसी के गुणगान से भरे रहते हैं। इसके कारण अन्यों में ईर्ष्या पैदा होती है। प.पू. गुरुजी कहते हैं कि "इन विदेशी विचारधाराओं में एक चेतना का तत्त्व पूरी तरह ओझल है। इस तत्त्व के अभाव में इन विचारधाराओं ने एक–दूसरे के विरोध को ही जन्म दिया है। केवल राजसत्ता के क्षेत्र में देखें तो वहाँ प्रत्येक व्यवस्था ने दूसरे विद्रोह को जन्म दिया है। फ्रांस की राज्यक्रांति के पूर्व आर्थिक, राजनैतिक शक्तियाँ राजा के हाथों में केन्द्रित थीं। अनियंत्रित शासन के अंतर्गत जनता कराहती थी। उसके विरुद्ध विद्रोह हुआ। उसी समय औद्योगीकरण और धनसम्पत्ति का एकत्रीकरण हो गया और सामन्तसत्ता को उखाड़कर धनसत्ता की स्थापना हुई। इस धनसत्ता के कारण होनेवाले शोषण के प्रति विद्रोह से श्रमसत्ता का निर्माण हुआ। अब इस श्रमसत्ता में व्याप्त एकाधिकार की प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह के बीज तैयार हो रहे हैं। पता नहीं इस रास्ते से मानव आगे कहाँ तक ढकेला जाएगा?"

यह बात पू. गुरुजी ने सन् 60 के दशक में कही थी। भविष्य में होने वाली सम्भावना का

ही उन्होंने संकेत दिया था। आज हम देखते हैं कि उनका कथन एक प्रकार से भविष्यवाणी ही सिद्ध हुआ और सारा कम्युनिस्ट साम्राज्य बिखरकर अपनी–अपनी राष्ट्रीयता के आधार पर विभिन्न देशों में बँट गया। 'स्पर्धा की भावना से प्रगति होती है'– इस स्थापना पर प्रहार करते हुए पू. गुरुजी कहते हैं कि "आपस में ईर्ष्या कर स्पर्धा करना और स्वयं आगे नहीं बढ़ सकें तो दूसरे को पीछे खींचकर अपना वर्चस्व सिद्ध करते जाना– इस ईर्ष्यायुक्त खींचतान को ही प्रगतिशीलता का नाम दिया जा रहा है। यह दावा किया जा रहा है कि इसके द्वारा प्रगति हुई है। परन्तु ईर्ष्या, विरोध और स्पर्धा के रास्ते प्रगति हुई है तो विनाश भी कम नहीं हो रहा है। सत्य तो यह है कि इनके द्वारा अन्ततोगत्वा विनाश ही अधिक होगा।" ईसा की इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में आज दिखाई दे रहा है कि विश्व एक भारी विनाशक आण्विक युद्ध के कगार पर खड़ा है। खनिज तेल के भण्डार पर कब्जा करने की लिप्सा में अपने को सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र माननेवाले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने ईराक जैसे छोटे देश पर सामूहिक नरसंहार के अस्त्र रखने का झूठा आरोप लगाकर वहाँ जनतंत्र स्थापना के नाम पर आक्रमण कर दिया और बुरी तरह फँस गया। अब वह ईरान पर आक्रमण करने की सोच रहा है और यूरोप के अन्य देश भी उसके साथ जुड़ रहे हैं। उधर चीन के विस्तारवादी मंसूबे भी किसी से छिपे नहीं हैं। ऐसे में जब ये देश विश्वशांति का नारा लगाते हैं तो लगता है "मुँह में राम बगल में छुरी" की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में विश्व–शांति का उपाय क्या है? यहीं पर हिन्दू तत्त्वज्ञान की बात सामने आती है।

समग्र हिन्दू तत्त्वज्ञान

पू. गुरुजी कहते हैं– "मनुष्य परस्पर संघर्ष न करे– ऐसा क्यों लगता है? यदि अपने को स्थूल मान लिया जाए, मरने के बाद क्या होगा इसकी चिन्ता न की जाय तब एक–दूसरे से स्नेह क्यों किया जाए न इसका उत्तर नहीं मिलता। किन्तु हमने उत्तर दिया है। शरीर, प्राण, मन, बुद्धि तक भिन्नता रह सकती है। वहाँ तक एक–दूसरे के सुख–दुःख में साथ देने तथा एकात्मता निर्माण करने की प्रेरणा नहीं रहती। किन्तु बुद्धि से भी आगे कुछ है। इसका अनुभव आता है गहरी नींद में। स्वप्नशून्य घोर निद्रा में जब मन निश्चेष्ट हो जाता है, बुद्धि शान्त हो जाती है, उस अवस्था का भी ज्ञान और सुख की अनुभूति लेने वाली कोई वस्तु है। यदि वह न हो तो गहरी नींद की इच्छा ही क्यों हो? गीता में कहा गया है–

इन्द्रियाणि पराण्याहुः, इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः, यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

(अर्थात्– स्थूल शरीर से परे इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे वह आत्मा है) यह आत्मा निराकार, निर्विकार, निहंकार है, सर्वव्यापी है, समस्त मानवों में वही व्याप्त है, सबमें एक ही वस्तु है। यह भाव जब कभी उत्पन्न होता है, दूसरे को सुखी करने की प्रेरणा देता है। जैसे मेरे शरीर से मुझे सुख–दुःख की अनुभूति होती है वैसे ही दूसरे शरीर से भी उस 'मुझे' ही सुख–दुःख का अनुभव होता है, अतः उसके सुख–दुःख से ही मेरा सुख–दुःख है– इस

सत्यधारणा के कारण ही मानव सुसूत्रता की इच्छा, एकात्मता की कामना और अनुभूति तथा बंधुभाव की लालसा करता है। मानव समाज के सुख की प्रेरणा तभी हमें मिल सकती है, जब हमें यह ज्ञान हो कि हम सबके अन्दर एक ही सत्य है, फिर उसे कोई भी नाम क्यों न दें। जितनी मात्रा में इसकी अनुभूति होगी उतनी ही मात्रा में मानव एकता सत्य–सृष्टि में आ सकेगी।"

इस आत्मतत्त्व का ज्ञान केवल हिन्दू के पास सुरक्षित है। उसी के आधार पर यहाँ की सभ्यता और संस्कृति का निर्माण हुआ है। पश्चिम के राष्ट्र बहिर्मुखी रहे। इसलिए उन्होंने बहिर्जगत् का यानि दूसरे प्रश्न का विचार अधिक किया। सर्वप्रथम एरिस्टॉटल ने कहा कि पृथ्वी चपटी है तथा सूर्य और चन्द्र उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। इस मान्यता का समावेश बाईबिल के 'पुराने सुसमाचार' में किया गया। इसमें 15वीं–16वीं शताब्दियों में कोपर्निकस और गैलीलियो तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गैलीलियो ने दूरबीन की खोजकर उसके सहारे अवलोकन करते हुए यह स्थापना की कि सभी आकाशीय पिण्ड गोल हैं तथा पृथ्वी सूर्य के चारों ओर व चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है। बाईबिल के प्रतिपादन से भिन्न होने के कारण गैलीलियो को आजन्म घर में ही निरुद्ध रहना पड़ा और उसके शिष्य ब्रूनो को आग में जला दिया गया।

इस पृथ्वी पर व्यक्ति तथा उनके समूहों में भिन्न गुणधर्म व स्वभाव दिखाई देते हैं। विश्व वैचित्र्य में उनका अपना-अपना स्थान है। इन गुण विशेषों को नष्ट कर एक साँचे में ढालने से प्रकृति का सौंदर्य तो नष्ट होता ही है, सुख भी समाप्त हो जाता है तथा जीवन का विकास अवरुद्ध हो जाता है। अतः इस वैशिष्ट्य में सामंजस्य निर्माण करना ही अपनी विशेषता है। हम राष्ट्रों का विनाश नहीं, समन्वय चाहते हैं।"

धीरे–धीरे विज्ञान की प्रगति होने लगी तथा विज्ञान, प्रत्यक्ष प्रयोग, अवलोकन व तज्जन्य निष्कर्ष पर आधारित होने के कारण उसकी मान्यता बढ़ने लगी ओर केवल विश्वास पर आधारित ईसाई पंथ पिछड़ने लगा। बाद में उन्नीसवीं सदी में सर आईजेक न्यूटन ने गुरुत्त्वाकर्षण का सिद्धांत तथा गति के नियम खोज निकाले और उसने एक यांत्रिक विश्व की अवधारणा प्रस्तुत की। यह मान्यता भी दृढ़ होती गई कि विज्ञान की कक्षा में वे ही चीजें आएँगी जिन्हें नापा जा सके या उपकरणों व प्रयोगों के द्वारा सिद्ध किया जा सके, और उन प्रयोगों को अन्यत्र दोहराया जा सके। न्यूटन ने तीन आयामी अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई से युक्त जगत् के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। किन्तु बीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में अलबर्ट आइन्स्टीन ने इस सिद्धांत को ध्वस्त करते हुए कहा कि विश्व चार आयामी है और चौथा आयाम है– 'काल'। यदि हमें विश्व की वास्तविकता जाननी हो तो हमें काल से भी परे जाना होगा, अर्थात् 'कालातीत' होना पड़ेगा।

उसी बीसवीं शताब्दी के मध्य में ही नील बोर सरीखे कण–विज्ञानी परमाणुओं को तोड़कर

उसके अंदर झाँकने में समर्थ हो सके और उन्होंने देखा कि प्रत्येक परमाणु के अंदर भी एक पूरा सौर मण्डल है, जिसमें प्रोटॉन आदि अन्य विद्यदणुओं से बने केन्द्रीय नाभिकीय के चारों आर इलेक्ट्रॉन, टेट्रॉन, हेड्रॉन, न्यट्रॉन नामक कई विद्युदणु 'वर्णनातीत' गति से घूम रहे हैं। ओपनहाइमर नामक एक विज्ञानी ने तो यहाँ तक कहा– "यदि कोई मुझसे पूछे कि क्या विद्युदणु स्थिर हैं, मैं कहूँगा 'नहीं'; यदि कोई पूछे कि क्या वे चलायमान हैं, मैं कहूँगा 'नहीं'; क्या वे परिवर्तनशील हैं, मैं कहूँगा 'नहीं'; क्या वे अपरिवर्तननीय हैं, मैं कहूँगा 'नहीं', क्या वे कण हैं, मैं कहूँगा 'नहीं', क्या वे तरंग हैं, मैं पुनः कहूँगा 'नहीं'।" इसी तथ्य को हमारे उपनिषत्कारों ने हजारों वर्ष पूर्व इन शब्दों में कहा था– "तदेजति, तन्न एजति; तद्दूरे, तदु अंतिके; तदु अन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः, अर्थात् वह चलता भी है, नहीं भी चलता है, वह दूर भी है, पास भी है; वह सबके अन्दर भी है, सबके बाहर भी है।" इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में आज विश्व की वास्तविकता का वर्णन करते हुए विज्ञान कह रहा है कि "विश्व ऊर्जापुंजों की अविभाज्य अन्तस्संलग्नता है, जहाँ प्रत्येक कण में अन्य सारे कण विद्यमान हैं।" समझने में दुर्बोध लग रही इस अवधारणा को हमारे उपनिषत्कारों ने 'बीज में वृक्ष, वृक्ष में बीज' कहकर अधिक सरल ढंग से समझाया था। हजारों वर्ष पूर्व निकाले गए भारतीय निष्कर्षों का ही समर्थन आधुनिक विज्ञान कर रहा है।

बाह्य जगत् के बारे में हिन्दू मनीषियों ने जो अवलोकन किया, उसमें उन्होंने पाया कि जगत् नित्य परिवर्तनशील हैं। जो पचास वर्ष पहले था, वह आज नहीं है। जो आज है, वह 50 वर्षों बाद नहीं रहेगा। इस नित्य परिवर्तनशील जगत् में क्या कोई अपरिवर्तनीय तत्त्व भी है? इसका जब वे विचार करने लगे तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समुद्र की सतह पर उठनेवाली तरंगों के समान यह दृश्य जगत् तरंगमात्र है; जिस अपरिवर्तनीय तत्त्व पर ये तरंगें उठ रही हैं, उसे उन्होंने परमात्म तत्त्व कहा है और एक गहरे चिन्तन के पश्चात् पाया कि वह परमात्म तत्त्व भी निराकार, निर्विकार, निरहंकार, अनादि और अनंत है। चूँकि अनंत एक ही हो सकता है, अतः आत्मा और परमात्मा एक ही हैं। जीवात्मा जहाँ संकुचित है, वहाँ परमात्मा विशाल और व्यापक है। ज्यों–ज्यों जीवात्मा अपनी संकुचितता को छोड़कर विशालता और व्यापकता ग्रहण करता जाता है, त्यों–त्यों वह परमात्मस्वरूप होने की दिशा में बढ़ता जाता है। परिवार, पास–पड़ौस, ग्राम, जिला, प्रांत, देश, विश्व आदि एक के बाद एक बढ़ते दायरे से तादात्म्य स्थापित करते हुए अंत में वह परमात्मा के साथ एकरूप हो जाता है। इसे ही हमारे यहाँ मोक्ष कहा है, जिसे जीवन का अंतिम पुरुषार्थ माना है। उसके पहले के तीन पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ और काम। प्रत्येक व्यक्ति में कामना होती है, जिसकी पूर्ति हेतु साधन अर्थात् 'अर्थ' चाहिए। किन्तु साधनों को जुटाने का काम इस ढंग से करने के लिए कहा गया है कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच विद्यमान सामंजस्य और संतुलन न बिगड़े। सामंजस्य और संतुलन के इन्हीं नियमों को हमारे यहाँ 'धर्म' कहा गया है। जिसे अँग्रेजी

भाषा के 'रिलीजन' यानी उपासना–पंथ का पर्याय मानकर हमने अत्यधिक संभ्रम को जन्म दिया है।

पुरुषार्थ चतुष्ट्य रूपी इस व्यवस्था के संबंध में पू. गुरुजी कहते हैं– "एकात्मता की अनुभूति इस आधार पर करना कि हम सबमें एक ही तत्त्व विद्यमान है। इसमें अलग–अलग अस्तित्व मानकर फिर भाईचारे का घोष करनेवाली बात नहीं है। सारा समाज हमारा है। इससे सहज भ्रातृभाव की उत्पत्ति, इसी में से दायित्व बोध कि अपनी शक्ति बुद्धि का पूर्ण उपयोग करते हुए जो प्राप्त हो, उसका वितरण करना जिससे सबको अधिकाधिक सुख मिले। इस वितरण के लिए वस्तुओं और साधनों का अधिकाधिक निर्माण करना भी आवश्यक होता है। इस स्थिति में एक अन्य समस्या सामने आती है कि अधिकाधिक सुखोपयोगी वस्तुओं और साधनों के निर्माण और उसका वितरण करने से उपभोग की प्रवृत्ति अनियंत्रित बढ़ती गई तो वह विनाश का कारण बनती है। इसलिए हमारे यहाँ कहा गया है कि धर्म के साथ चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष यानि जीवनलक्ष्य का स्मरण भी रखना चाहिए। मनुष्य–जीवन का अंतिम लक्ष्य भोग नहीं है। इसलिए वह उपभोगों का दास नहीं बन सकता। मनुष्य उनका स्वामी है इसलिए वह इनका उपयोग जीवन के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु करेगा और तब सर्वसुख–सम्पन्न जीवन, मोक्ष पुरुषार्थ से प्रेरणा ग्रहण करते हुए त्यागमय हो सकेगा। इसलिए स्वयं पूरा परिश्रम करते हुए अधिकाधिक वस्तुओं की प्राप्ति और वितरण करना और व्यक्तिगत उपभोग के लिए उनका संग्रह न करना अपना कर्तव्य बन जाता है। यह लक्ष्य हमारे सामने है। इस सिद्धांत के आधार पर जो भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक कार्यक्रम तैयार हों– उपयुक्त ही कहे जाएँगे।"

> **भारत के नवोत्थान की यह विशेषता रही है कि प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक नवरचना के पूर्व आध्यात्मिक पुनर्जागरण होता रहा है।**

भगीरथ प्रयत्न

राष्ट्र संबंधी सारी भ्रान्त धारणाओं को दूरकर उसके शुद्ध रूप को निखारने का प्रयत्न पू. गुरुजी ने आजीवन किया। लगातार 33 वर्षों तक अविरत एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमणरत रहकर अपने इस हिन्दू राष्ट्र को आत्मविस्मृति के गर्त से बाहर लाने का उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किया। "हिन्दुस्थान हिन्दू राष्ट्र है और जब तक एक भी हिन्दू इस देश की भूमि पर रहेगा यह हिन्दू राष्ट्र ही रहेगा," इस सत्य का उच्चारण कर डाक्टर हेडगेवार ने इस विच्छिन्न हिन्दू समाज को संगठित करने का कार्य सन् 1925 में प्रारंभ किया था और 15 वर्षों तक अपने रक्त के एक–एक कण को पसीना बनाकर उन्होंने इस प्रचलित धारणा को मिथ्या सिद्ध कर दिया कि हिन्दू संगठित नहीं हो सकता। सन् 1940 के नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग में, जिसमें कच्छ के कामरूप और कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब प्रान्तों के स्वयंसेवक भाग लेने आए थे, अपना अंतिम विदाई भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि "आज मैं हिन्दू राष्ट्र का छोटा सा स्वरूप अपनी

आँखों के सामने देख रहा हूँ।" उसके डेढ़ सप्ताह बाद ही उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं, किन्तु उसके पूर्व कार्य की धुरा प. पू. गुरुजी के युवा सबल कंधों पर सौंप दी।

यह एक अद्भुत प्रसंग था जब प. पू. गुरुजी के व्यक्तित्व में देश की दो धाराओं का संगम हुआ। भारत के नवोत्थान की यह विशेषता रही है कि प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक नवरचना के पूर्व आध्यात्मिक पुनर्जागरण होता रहा है। आध्यात्मिक पुनर्जारण की प्रक्रिया 19वीं सदी में स्वामी दयानन्द सरस्वती से प्रारंभ होकर बाद में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, भगिनी निवेदिता, स्वामी रामतीर्थ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, ऋषि अरविन्द, श्रीमती एनी बेसेण्ट आदि के माध्यम से आगे बढ़ी। दूसरी ओर सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपत राय, बालगंगाधर तिलक, बिपिनचन्द्र पाल, महात्मा गाँधी स्वातंत्र्यवीर सावरकर, डॉ. अम्बेडकर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि के माध्यम से जनान्दोलन की राजनैतिक धारा चली। राजनैतिक आन्दोलन की एक दूसरी धारा क्रांतिधारा थी जिसमें रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, बाबा रामसिंह, वासुदेव बलवन्त फड़के, खुदीराम बोस, प्रीतिलता वहाद्दार, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, अशफाक उल्ला खाँ आदि क्रांतिकारियों ने अपना बलिदान दिया। डाक्टर हेडगेवार यदि क्रांतिधारा व राजनैतिक धारा में से आए थे तो पू. गुरुजी आध्यात्मिक धारा की उपज थे। पर दोनों धाराओं का संगम 1937 में हो गया और श्री गुरुजी ने आध्यात्मिकता के अधिष्ठान पर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया और राष्ट्र को अपने जीवनोद्देश्य का स्मरण कराया।

श्री गुरु जी जैसा प्रतिभासम्पन्न आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति यदि रामकृष्ण मिशन में होता तो मिशन को एक नया विवेकानन्द प्राप्त हुआ होता।

जागतिक एकता के संबंध में उन दिनों प्रचलित अवधारणाओं की चर्चा करते हुए पू. गुरुजी ने कहा– "कुछ लोग कहते हैं कि जागतिक एकता के लिए आवश्यक है कि सब मिलकर एक ही हो जाएँ, उनमें किंचिन्मात्र भी भिन्नता न रहे और जीवन के सभी क्षेत्रों में एकरूपता हो। इसके विपरीत दूसरा विचार यह भी है कि भिन्न–भिन्न मनुष्य समूह राष्ट्र के रूप में अपना जीवन बनाए रखते हुए भी परस्पर स्नेह से रहें और सामूहिक एकता की अनुभूति करते जाएँ। ये दोनों विचार बड़े लोग लेकर चल रहे हैं।

हमारा विचार भी इस संबंध में स्पष्ट है और वह प्राचीनकाल से चला आ रहा है। राष्ट्र एक मनुष्यों का समूह होता है, जिसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। उनमें भी सामंजस्य निर्माण करना अभिप्रेत है। इस पृथ्वी पर व्यक्ति तथा उनके समूहों में भिन्न गुणधर्म व स्वभाव दिखाई देते हैं। विश्व वैचित्र्य में उनका अपना–अपना स्थान है। इन गुण विशेषों को नष्ट कर एक साँचे में ढालने से प्रकृति का सौंदर्य तो नष्ट होता ही है, सुख भी समाप्त हो जाता है तथा जीवन का विकास अवरुद्ध हो जाता है। अतः इस वैशिष्ट्य में सामंजस्य निर्माण करना ही अपनी विशेषता है। हम राष्ट्रों

का विनाश नहीं, समन्वय चाहते हैं।"

'राष्ट्र' अवधारणा

इस दृष्टि से देखने पर जीवात्मा से विश्वात्मा और तत्पश्चात् परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करने हेतु परिवार, ग्राम, जनपद, स्वभाषिक समूह आदि जो उत्तरोत्तर वर्धमान सीढ़ियाँ हैं। उनमें राष्ट्र भी एक अति महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस दृष्टि से अपने यहाँ की 'राष्ट्र' की अवधारणा पाश्चात्य अवधारणा से भिन्न है और इसी में विश्व की एकता स्थापित करने का सामर्थ्य है। पाश्चात्य अवधारणा ने यदि संघर्ष और विनाश को जन्म दिया तो राष्ट्र की हिन्दू अवधारणा ही विभिन्न राष्ट्रों के प्रकृति वैचित्र्य के बीच समन्वय स्थापना का मार्ग बनाने का लक्ष्य विश्व की एकता और मानव कल्याण के लिए एक अनिवार्य पूर्वशर्त है। पूज्य गुरुजी कहते हैं कि "सम्पूर्ण मानव की एक ही स्थिति का विचार भी हमारे यहाँ है। किन्तु वह तभी संभव है जब मानव अतिमानव के रूप में विकसित हो जाए। जब तक मानव, मानव रहेगा; जब तक उसकी भिन्न गुण–प्रकृति बनी रहेगी; जब तक गुणवैशिष्ट्य को प्रगट करनेवाला तथा उसके अनुसार चलनेवाला राष्ट्र रहेगा तब तक अपनी संपूर्ण शक्ति और बुद्धि उसके समन्वयं में लगानी चाहिए। हमारे यहाँ क्रमानुसार विकास का विचार है। हमने मनुष्य समूहों के गुण वैशिष्ट्यों के अनुसार व्यवहार का निर्देश दिया है। मानवता के विकास व कल्याण के लिए अपने राष्ट्रों को उसकी संपूर्ण विशेषताओं तथा विविधताओं के साथ विकसित करना परमावश्यक है।"

—लेखक संघ के वर्तमान सरसंघचालक

....

श्रद्धा बिन्दु गौ के रक्षणार्थ

भारत में श्रद्धा बिन्दु के नाते प्राचीन काल से गौवंश को पूज्य मानने की प्रथा चली है। स्वतंत्रता की लड़ाई के सब नेताओं ने भी गौ रक्षा को एक प्रमुख मुद्दा बनाया था। श्री गुरुजी ने भी इस मुद्दे को उठाकर 'गौ हत्या निषेध समिति" का अखिल भारतीय मंच खड़ा कर दिया। उसमें देश के प्रख्यात गौभक्त, साधु-संतों ने भी भाग लिया। उस माँग के समर्थन में स्वयंसेवकों ने देशभर में लगभग पौने दो करोड़ वयस्क नागरिकों का हस्ताक्षर-संग्रह जुटाया। ये हस्ताक्षर 81,524 छोटे-बडे गाँवों और शहरों से एकत्र किये गए थे। उन सबको दिल्ली में लाकर 7 दिसम्बर 1952 को 22 बैलगाड़ियों में भरकर तत्कालीन राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी को अर्पित किया गया। उस शिष्टमंडल के मुखिया के नाते स्वयं गुरुजी थे। केन्द्र सरकार तो अखिल भारतीय स्तर पर कानून बनाने की मनःस्थिति में नहीं थी परन्तु कुछ राज्यों ने गौ हत्या निषेध का कानून जारी कर दिया।

श्री गुरुजी : जागतिक शान्ति और राष्ट्र-अवधारणा


मा. गो. वैद्य

मनुष्य का मन और बुद्धि जैसे जैसे उन्नत और विकसित होते हैं, वह अपने व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर औरों के हित की बात सोचने लगता है। फिर परिवार की बात सोचता है, पड़ौस की बात सोचता है, अपने समाज की बात सोचता है, संपूर्ण मानवजाति की भी बात सोचता है। इस विकास और उदारता की कोई सीमा नहीं है। महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम के बारे में कहते हैं कि "तुका झाला आकाशा एवढा" –यानी तुकाराम आकाश के समकक्ष बड़े हो गए हैं। सन्त ज्ञानेश्वर तो मानवजाति के भी परे की बात सोचते हैं। 'पसायदान' में वे कहते हैं कि 'जो जे वांछील तो ते लाहो– प्राणिजात' – इन पंक्तियों में केवल मानव के कल्याण की इच्छा नहीं है, संपूर्ण प्राणि जगत् के कल्याण की कामना है।

जय जगत्

जगत् कल्याण की बात महाराष्ट्र के सन्तों ने ही की है, ऐसी बात नहीं है। साधारणतः सामान्य हिन्दू व्यक्ति की यही कामना रही है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।' (अर्थात् सब लोग सुखी होवें। सब लोग निरोगी होवें। सभी को कल्याणकारक अनुभव प्राप्त हों। किसी को भी दुःख न हो)– यह सभी की प्रार्थना रही है।

आज सब लोग जागतिक दृष्टि से (Global view) सोचने लगे हैं। विनोबा भावे ने 'जय जगत्' का नारा दिया था। इस्लाम ने भी कहा था कि सारी दुनिया अल्लाह की है। कम्युनिझम् की भी उद्‌घोषणा थी कि दुनिया के मजदूर एक हो जाएँ (workers of the world unite)

यदि, इस प्रकार की एकात्म जगत् की उपस्थिति आप चाहते हैं, तो अनेकों पण्डितों का मानना है कि राष्ट्र की अवधारणा इसमें बाधक है। अतः कम्युनिझम् राष्ट्र की अवधारणा में सिद्धान्ततः विश्वास नहीं करता। दुनिया के मजदूरों को एक समझना है तो, स्वाभाविकतः, राष्ट्र की सीमाएँ बाधक होंगी ही। इस्लाम भी एक 'उम्मा' की अवधारणा लेकर चलता है। 'उम्मा' यानी एक बन्धुसंघ है। पैगम्बर साहब ने अपनी मृत्यु के पूर्व दिए हुए, एक प्रकार से अन्तिम उपदेश में कहा है– "हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का बन्धु है। सब मुसलमान समान हैं। तुम सब मिलकर एक उम्मा हो।" यह कोई कोरा उपदेश नहीं था। उसका पालन भी हुआ। अतः वंश, भाषा, देश, राष्ट्र की सारी भावनाएँ 'उम्मा' की तुलना में गौण हो गईं। "सारी भूमि अल्लाह की है और सब लोग अल्लाह के बन्दे हैं। नहीं हैं, तो वैसे बनने चाहिएँ।" केवल उनको ही ऐसा बनना चाहिए, यहाँ तक यह उपदेश सीमित नहीं है। दुनिया भी दार–उल–इस्लाम बने यह चाह है– एक प्रकार से 'एक जगत्' की ही यह भावना है।

राष्ट्र - एक संकीर्णता?

यूरोप के इतिहास ने बताया है कि 'राष्ट्र'

एक संकीर्ण भावना है। दो विश्वयुद्धों का कारण एकान्तिक राष्ट्रवाद है। जर्मन लोगों के अतिवादी राष्ट्रभाव के कारण ही दो भीषणं मानव संहारक युद्ध हुए। इस्लाम का अर्थ 'शान्ति' है फिर भी इस्लामी लोगों ने इस्लाम का विस्तार करने के लिए तलवार का यानी हिंसा का सहारा लिया। ईसा मसीह के 'सर्मन् ऑन द माऊंट' नाम से प्रसिद्ध उपदेश में तो शान्ति और सहिष्णुता का परमोच्च आदर्श निहित है। ईसा मसीह कहते है– "शान्ति बनाने वालों का कल्याण हो। उन्हें भगवान् की सन्तान कहा जाएगा। प्रतिशोध नहीं लेना चाहिए। किसी ने तुम्हारे दाएँ गाल पर एक तमाचा मार दिया तो दूसरा गाल सामने करो। किसी ने तुम्हारा कोट माँगा, तो अंगरक्खा भी दे दो। आपको कहा गया होगा कि अपने पड़ौसी से प्यार करो और शत्रुओं से नफरत। किन्तु मैं कहता हूँ कि शत्रुओं से भी प्यार करो। जो तुम्हें शाप देते हैं उन्हें भी आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा द्वेष करते हैं, उनके साथ अच्छा व्यवहार करो। जो तुमसे तिरस्कारपूर्वक व्यवहार करते हैं, तुम्हें कष्ट देते हैं, उनके लिए भगवान. से प्रार्थना करो।" इस उदात्त उपदेश को मानने वालों ने ही केवल बीस–इक्कीस वर्षों के अन्तराल में दो महाभीषण युद्ध दुनिया पर थोपे। और आज केवल मानव का ही नहीं, संपूर्ण सृष्टि का विनाश करने की क्षमतावाले. अणुबॉम्ब किसी के पास अत्यंत प्रचुर मात्रा में हैं, तो ईसा मसीह को माननेवाले इन्हीं राष्ट्रों के पास हैं। अतः कई विचारक मानते हैं कि राष्ट्रवाद का विचार संकीर्ण है। विचार आखिर मानवता का करना चाहिए। संपूर्ण जगत् का एक राष्ट्र बनना चाहिए। संपूर्ण जगत् का एक राज्य बनना चाहिए।

हिन्दुत्व की सोच

इस परिप्रेक्ष्य में हमें देखना है कि क्या 'हिन्दू राष्ट्र' की अवधारणा भी इसी प्रकार संकीर्ण होने के कारण अंतिमतः मानवसंहार के लिए कारणीभूत होगी? क्या वह जगत् की एकता सँजोकर जगत् में शान्ति ला सकेगी? यदि पश्चिमी जगत् की राष्ट्र की अवधारणा और राष्ट्र का ज्वलन्त अभिमान मानव संहार करने में परिणत हुआ, तो हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा का वैसा ही परिणाम क्यों नहीं निकलेगा? इस स्थिति में हिन्दुत्व की क्या भूमिका हो सकती है? क्या इस्लाम और साम्यवाद की तरह जागतिक एकता और जागतिक शान्ति मृगमरीचिका की भाँति, भ्रम पैदा करनेवाली ही हिन्दुत्व की या हिन्दू राष्ट्र की भूमिका रहेगी?

इन प्रश्नों के सही उत्तर के लिए हमें श्री गुरुजी द्वारा समय–समय किये गए मार्गदर्शन की ओर अपनी दृष्टि और अपनी सोच को मोड़ने की आवश्यकता है। श्री गुरुजी प्रश्न खड़ा करते हैं कि जगत् की एकता का भाव कैसे निर्माण होगा? और उसका उत्तर देते हैं कि, किसी कृत्रिम संगठन से यह भाव निर्माण नहीं हो सकता। बीसवीं शताब्दी का अनुभव बताते हुए वे कहते हैं कि जगत् में शान्ति बनी रहे, युद्ध न हो, इस हेतु, प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् 'लीग ऑफ नेशन्स' की स्थापना की गई। किन्तु 'लीग ऑफ नेशन्स' असफल रहा। द्वितीय युद्ध के पश्चात् 'युनाइटेड् नेशन्स' की स्थापना हुई। किन्तु वह भी राष्ट्रों के बीच के

संघर्ष नहीं टाल सका। यह सही है कि अब तक तीसरा विश्वयुद्ध शुरू नहीं हुआ। किन्तु वह कभी भी शुरू हो सकता है। इस सम्बन्ध में श्री गुरुजी कहते हैं– "लीग ऑफ नेशन्स या युनायटेड नेशन्स– की स्थापना जगत् में भ्रातृभाव निर्माण करने के लिए नहीं हुई। शक्तिशाली राष्ट्रों ने अपने राष्ट्र के संकीर्ण लाभ के लिए उन संस्थाओं का उपयोग किया। मानव जाति के कल्याण की सद्भावना लेकर बड़े राष्ट्र एकत्र नहीं आए, उल्टे अपने राजनीतिक स्वार्थ और शक्ति के लिए वे अधिकाधिक व्यावर्तक (Exclusive) बनते गए और दुनिया में अपना प्रभाव जमाने की अपनी आकांक्षा को बढ़ाते गए।" तात्पर्य यह है कि, कृत्रिम रीति से एकता नहीं बन सकती। भय के आधार पर वह टिक नहीं सकती। इसलिए चाहिए विश्व का एकात्म दर्शन। यह एकात्म दर्शन ही वैश्विक दर्शन हो सकता है। यह दर्शन, श्री गुरुजी बताते हैं, "भौतिकता पर आधारित नही होगा।" साम्यवाद इसलिए विफल रहा कि, उसने केवल भौतिक सुख की, मनुष्य के भोजन, वस्त्र और निवास की ही बात सोची। कम्युनिस्ट रूस ने सत्तर वर्षों तक राज्य की पूरी शक्ति लगाकर इस हेतु प्रयास किए। किन्तु उसका आज क्या हाल है, यह हम सब जानते हैं। वह, अपने लोगों को भी भौतिक सुख भी देने में असमर्थ रहा। जग के कल्याण की तो बात ही दूर रही। राष्ट्र हो, या राज्य हो; मजहब हो या संप्रदाय विशेष हो– सब, यही बताते हैं कि हमें मानव का सुख अभिप्रेत है। किन्तु, उनकी सुख की कल्पना बहिरंग मात्र में सीमित है। हिन्दुत्व की विशेषता यह है कि उसने अन्तरंग का विचार किया। उसने बताया कि सब के भीतर एक ही आत्मतत्त्व है। इस आत्मतत्त्व को नाम आप कुछ भी दें। ईश्वर कहें, शून्य कहें, आत्मा कहें, या और कोई नाम दें। किन्तु वह सबके अन्दर विद्यमान है। उस आत्मतत्त्व के साथ जब तक मनुष्य अपने को एकरूप नहीं बना पाता, तब तक वह विश्वैक्य की बात भी नहीं कर सकता। श्री गुरुजी कहते हैं– "आज तक के सारे प्रयत्न उन वादों पर निर्भर रहे जो भौतिकवाद से उपजे। हमने विश्व की एकता का और संपूर्ण मानव जाति के कल्याण का विचार क्यों करना चाहिए, तथा, एक व्यक्ति के दुःख को देखकर दूसरे ने दुःखी क्यो होना चाहिए– इन प्रश्नों का उत्तर भौतिकवाद नहीं दे सकता। भौतिकवाद की दृष्टि से तो हम सब अलग अलग हैं, हम अपने में स्वयंपूर्ण हैं, हम मात्र भौतिक अस्तित्व हैं। तो हममें परस्पर प्रेम क्यों और कैसे उत्पन्न होगा? अपने स्वार्थ को नियंत्रित करके, दूसरों के कल्याण के लिए वह क्यों प्रवृत्त होगा? हिन्दू चिन्तकों ने भौतिकवाद

> *"विश्वात्मकता का यह विचार हिंदुओं ने ही विश्व को दिया है। और यही चिरस्थायी विश्वबन्धुता का आधार बन सकता है। हरेक को अपनी-अपनी प्रतिभा और रुचि के अनुरूप कार्य करने की छूट देते हुए, विश्व के अन्तरंग में व्याप्त एक आत्मतत्त्व के बोध के कारण ही विश्वशांति आएगी और इस प्रक्रिया में विश्वकल्याण के साथ व्यक्ति भी अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकेगा।"*
>
> *–श्री गुरुजी*

की सीमाओं को लाँघकर अपनी सोच आगे प्रवृत्त की। और सबके अन्दर एक अंतिम सत्य है? इस की अनुभूति की। इस अन्तरतम सत्य को उन्होंने पहचाना, उसका दर्शन किया और विश्व की तरफ एकात्म दृष्टि से देखना सिखाया। मुझमें जो 'अहं' है, वही विश्व के सभी मानवों में भी विद्यमान है। इसका ज्ञान होगा, तो ही अन्य के आनन्द से मैं आनन्दी और अन्य के दुःख से मैं दुःखी होऊँ। सब के अन्दर एक ही आत्मतत्त्व है। इस विश्वास और अनुभूति के आधार पर ही हमें विश्वैक्य और विश्वबन्धुत्व की और प्रेरित किया। यह समान आंतरिक एकता का ज्ञान ही विश्व की एकता और मानव कल्याण के लिए कारण बन सकता है। जिस प्रमाण में यह एकात्मभाव जागृत रहेगा, सभी क्रियाकलापों में अनुस्यूत रहेगा, उतने ही प्रमाण में विश्वमें एकता और सद्भाव बना रहेगा."

श्री गुरुजी आगे बताते हैं– "विश्वात्मकता का यह विचार हिंदुओं ने ही विश्व को दिया है। और यही चिरस्थायी विश्वबन्धुता का आधार बन सकता है। हरेक को अपनी–अपनी प्रतिभा और रुचि के अनुरूप कार्य करने की छूट देते हुए, विश्व के अन्तरंग में व्याप्त एक आत्मतत्त्व के बोध के कारण ही विश्वशांति आएगी और इस प्रक्रिया में विश्वकल्याण के साथ व्यक्ति भी अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकेगा।"

एकरूपता नहीं, सामंजस्य

हिन्दुओं ने यह एकात्मता की भावना केवल बुद्धिगम्य नहीं रखी। उसको आचरण का अंग बना दिया। और उसी आचरण के साथ हिन्दू विचारक, प्रशासक, वैज्ञानिक, व्यापारी, दार्शनिक और कलावन्त सारी दुनिया में गए और वहाँ वहाँ के लोगों की अस्मिता और विशेषताओं को न मिटाते हुए, उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को उन्नत किया। तलवार के भरोसे यह काम होने वाला नहीं था। हिन्दुत्व तलवार लेकर बाहर गया ही नहीं। ज्ञान और उसके अनुरूप आचरण लेकर गया था।

हिन्दुत्व की उस भावना को भी श्री गुरुजी ने उजागर किया कि जिस प्रकार व्यक्ति की एक विशेषता होती है, वैसी ही राष्ट्र की भी होती है। विश्वशान्ति के लिए राष्ट्र की अस्मिता को, उसकी विशेष पहचान को मिटाने की आवश्यकता नहीं। वे कहते हैं– "हमारे सामने प्रश्न खड़ा होगा कि यह आंतरिक एकात्मता का आधार कैसे प्रकट होगा? क्या इस हेतु हमें सब प्रकार की विशेषताओं को मिटाना होगा? क्या उन सबको एकरूप बनाना होगा। नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। हमें सब विशेषताओं में समन्वय और सामंजस्य (harmany) बिठाना होगा। हम विशेषताओं को मिटाने की सोचेंगे तो सृष्टि का सारा नैसर्गिक सौन्दर्य ही नष्ट कर देंगे। हरेक व्यक्ति और राष्ट्र की वैशिष्ट्यपूर्ण प्रतिभा रहती है। उसके विकास के लिए मुक्त वातावरण चाहिए। आवश्यकता इतनी मात्र है कि विकास के प्रयासों में, हमें मानवजाति की एकात्मता का भान नहीं छूटना चाहिए।"

संक्षेप में श्री गुरुजी बताते हैं– "हम राष्ट्रों में समन्वय और सामंजस्य (Harmony) चाहते हैं। उनकी अस्मिता को मिटाना नहीं चाहते। सब को एक ही भौतिक धरातल पर लाना यह कभी भी हमारा लक्ष्य नहीं रहा। संपूर्ण जगत् का एक राज्य भी हुआ तो भी वह स्वायत्त, स्वयंपूर्ण

राष्ट्रों का एक महासंघ होगा, जो आंतरिक एकता के सूत्र से सभी को बाँध रखेगा।

हिन्दू संस्कृति की विशेषता

हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी बताते है– "हमारी हिन्दुराष्ट्र की संकल्पना यानी मात्र राजकीय और आर्थिक अधिकारों का संचय नहीं है। हमारी राष्ट्र की अवधारणा सांस्कृतिक है। हमारी संस्कृति के पुनरुज्जीवन से ही हमारा राष्ट्र विश्व में चमकेगा।" अपनी संस्कृति की मान्यताओं का विवेचन करते हुए उसकी कुछ विशेषताओं का वर्णन श्री गुरुजी करते हैं।

(1) यह सारा जगत् परमात्मा से ओतप्रोत है– ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। हम अपने जीवन में चाहें उतनी संपदा एकत्रित कर सकते हैं। उसका उपभोग भी ले सकते है। किन्तु एक शर्त है। जहाँ से और जिसके कारण वह संपदा मिली, उसको पहले देना होगा। बाद में आपका उपभोग आएगा– तेन व्यक्तेन भुजीथाः, मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।

(2) सृष्टि में विविधता है, और विविधता रहेगी, रहनी भी चाहिए। उस विविधता का आदर करो। गन्तव्य स्थान एक होने पर भी, वहाँ पहुँचने के मार्ग अनेक हो सकते है, यह मान्य करो। वस्तु एक होने पर भी उनके नाम अलग हो सकते है– यह जानो। परमात्मा एक है, किन्तु क्या उसका आविष्कार एकरूप है? नहीं, वैसा होता, तो सारे मानव एक सरीखे हो जाते। भगवान् को ऐसी एकरूपता मान्य नहीं है। अतः हिन्दू कहता है कि 'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति'– सत्य एक है किन्तु विद्वान लोग उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते है। अतः हिन्दू कहता है कि आकाश से गिरा हुआ पानी भिन्न–भिन्न मार्गों से जाकर आखिर सागर को ही मिलता है– 'आकाशात् पतितं तोयः यथा गच्छति सागरम्।' और रुचि के, वैचिष्य के कारण, मनुष्य सीधे हों या टेढ़े हों किसी भी मार्ग से भगवान् के पास जा सकता है। यह विविधता भेदभाव का कारण नहीं बन सकती। कारण, हम विविधता के अंदर की एकात्मता को जानते हैं। हम डायव्हर्सिटी में युनिटी देखते हैं। Unity in divercity –यह सिद्धान्त हिन्दू संस्कृति की विश्व को देन है। अतः मानवता को 'मोमिन और काफिर' अथवा 'ख्रिश्चन और हीदन'– इस प्रकार के दो परस्पर व्यावर्तक (mutually exclusive) गुटों में हिन्दू बाँटता नहीं। अतः, हिन्दुओं में अनेक पन्थ हुए। उनमें शास्त्रचर्चा हुई, शस्त्रचर्चा नहीं हुई; जो कॅथॉलिक और प्रॉटेस्टंटो में हुई। या शिया और सुन्नी और कादियानी में हुई। सब पन्थों, सब सम्प्रदायों, निराकार परमात्मा के सब रूपों के अस्तित्व को सिद्धान्ततः और व्यवहारतः मान्य करने वाली कोई संस्कृति जगत् में है, तो वह हिन्दू संस्कृति है। अनेकता में एकता को देखने की दृष्टि और ज्ञान आ गया कि फिर सारे संघर्ष समाप्त हो जाते हैं। संघर्ष के बीज ही नहीं उगते।

> **"हरेक व्यक्ति और राष्ट्र की वैशिष्ट्यपूर्ण प्रतिभा रहती है। उसके विकास के लिए मुक्त वातावरण चाहिए। आवश्यकता इतनी मात्र है कि विकास के प्रयासों में, हमें मानवजाति की एकात्मता का भान नहीं छूटना चाहिए।"**

समन्वय और सामंजस्य फैलता है।

(३) हमारी संस्कृति अधिकारों पर नहीं, कर्तव्यों पर जोर देती है। अपना कर्तव्य हमने पहचान लिया और उसके अनुसार आचरण करने लगे कि आप ही आप अन्यों के अधिकारों की रक्षा हो जाती है। हमारी संस्कृति ने कर्तव्य के लिए बड़ा सुन्दर और बड़ा व्यापक आशय वाला शब्द दिया है। वह शब्द है 'धर्म'। 'पुत्रधर्म' पुत्रों के उन कर्तव्यों का बखान करता है, जिनसे माता–पिता के अधिकारों की रक्षा हो जाती है। 'राजधर्म' राजा के उन कर्तव्यों का वर्णन करता है, जिनसे प्रजा के अधिकारों की रक्षा होती है। सब सृष्टि के मूल में यह 'धर्म' है। यह 'धर्म' ही प्रजा का धारण करता है। इसलिए तो उसे 'धर्म' संज्ञा प्राप्त हुई है।

(4) हमारी संस्कृति व्यक्ति और समाज में टकराव नहीं देखती। व्यक्ति अंग है और समाज अंगी। अंगों से ही अंगी बनता है। हाथ, पाँव, नाक, कान आदि अंग हैं। शरीर अंगी है। अंगों का अस्तित्व आवश्यक है किन्तु अंगी का महत्त्व प्रत्येक अंग से अधिक है। एक भक्त भगवान से कहता है, 'हे भगवन्, मुझे तुम्हारा साक्षात्कार हो गया है। द्वैत समाप्त हो गया है। भक्त और भगवान् एकरूप हो गए हैं, फिर भी, हे भगवन्, मैं तुम्हारे लिए हूँ, तुम मेरे लिए नहीं।

समुद्र यानी क्या? केवल लहरों का समुच्चय ही है ना! फिर भी लहर समुद्र की होती है, समुद्र लहर का नहीं बनता। व्यक्ति और समाज का ऐसा सम्बन्ध है। समाज भगवान् है और व्यक्ति उस का भक्त!

इन गुणों से युक्त संस्कृति ही हमारे राष्ट्रजीवन और राष्ट्रीयता का आधार है। इसलिए हम कहते हैं कि हमारा राष्ट्रवाद सांस्कृतिक है। इन सांस्कृतिक मूल्यों को हम भूल जाएँगे, तो राष्ट्र क्या बचेगा? हिन्दू राष्ट्र की यह अवधारणा विश्वशान्ति ला सकती है।

किन्तु यह कब होगा? श्री गुरुजी कहते हैं-- "संपूर्ण मानव जाति को हमारा यह अद्वितीय ज्ञान देने के लिए, संपूर्ण विश्व की एकता बनी रहे और विश्व का कल्याण हो इसलिए, एक आत्मविश्वासपूर्ण शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में हम खड़े रहें। हमारे राष्ट्र की शक्तिसंपन्नता ही विश्व के सामने भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय का अनुपम नमूना पेश कर सकेगी।"

श्री गुरुजी का यह दर्शन आज के संघर्ष भरे विश्व को शान्ति का मार्ग बताने वाला है। क्योंकि वह जिस प्रकार विविधता की रक्षा करनेवाला है, उसी प्रकार एकात्मता का ज्ञान और भान भी देने वाला है। आवश्यकता मात्र इतनी है कि जिन हिन्दुओं का यह विश्वात्म दर्शन है, उन हिन्दुओं ने उसका अभिमान धारण कर, विश्व के सामने एक शक्तिसंपन्न, आत्मविश्वासपूर्ण और अपने जागतिक दायित्व का बोध अंतःकरण में धारण कर खड़े होना है।

—लेखक मराठी दैनिक 'तरुण भारत', नागपुर के पूर्व संपादक; महाराष्ट्र विधानपरिषद् के पूर्व मानद सदस्य; संघ की अखिल भारतीय कार्यकारिणी के वरिष्ठ सदस्य

"श्री गुरुजी एक महापुरुष थे। उनके जैसे व्यक्ति अमर होते हैं। उनके देहावसान से सिख सम्प्रदाय को भारी क्षति हुई है।" -अकाली दल के नेता तथा जत्थेदार श्री संतोष सिंह

Sri Guruji

A Guiding Force for Global Hindutva

V. SUNDARAM, I.A.S.

A nation is a soul, a spiritual principle. Two things that in truth are but one constitute this soul or spiritual principle. One lies in the past, one in the present. One is the possession in common of a rich legacy of memories; the other is present-day consent, the desire to live together, the will to perpetuate the value of the heritage that one has received in an undivided form.

Man does not improvise. The nation, like the individual, is the culmination of a long past of heroic endeavours, selfless sacrifices, and glorious deeds of devotion. Of all cults, that of the ancestors is the most legitimate, for the ancestors have made us what we are. A heroic past, great men, glory in song, tradition and legend—this is the social capital upon which one bases a national idea. To have common glories in the past and to have a common will in the present; to have performed great deeds together, to wish to perform still more—these are the essential conditions for being a people. One loves in proportion to the sacrifices to which one has consented, and in proportion to the ills that one has suffered. One loves the house that one has built and that one has handed down. The Spartan song- "We are what you were; we will be what you are"—is, in its simplicity, the abridged hymn of Hindutva today. If Hindutva vanishes, what will Bharatvarsha be? She will become a geographical expression of the vanished past, a dim memory of a perished glory. We have to avert this grim national tragedy at any cost. How can we forget that our history, our literature, our art, our temples and monuments, all have Hinduism writ indelibly across them?

Sri Guruji was pained that Hindus should have been reduced to the position of "non-Muslims" in post-independent India. Even before Independence, he wondered why India alone should be described as a "sub-continent" when even much bigger countries like USA, USSR and China were not described in that manner. He said he had no doubt that our country was being dubbed a "sub-continent" only to prepare the public mind for its Partition. Consistently, Sri Guruji took a strong stand against the Partition of India. He stood for Akhand Bharat throughout his lifetime.

Sri Guruji always ridiculed the idea of India being a "nation in the making" and said that proponents of this theory appeared to be only "patriots in the making". Wherever he went he quoted chapter and verse to show that *Bharatvarsh* had been a "*Rashtra*" since Vedic times. He was quite amused that Shaivites and

Vaishnavites of Kanchipuram should refer their religious ritualistic disputes—whether the temple elephant should bear a "U" *tilak* or a "Y" *tilak*—to the British Privy Council, which knew little about India and nothing about Hinduism.

A little before the Partition of India when Sri K. Ponniah, Editor of *The Sindh Observer* asked him if it would really matter if India was partitioned, Sri Guruji said that at that rate it wouldn't matter if somebody lost his nose. At that point of time when somebody said that it didn't matter if all Hindus became Muslims in one stroke, Sri Guruji replied: "*It wouldn't matter even if all the Hindus died. Because they would live as ashes, and science has proved that matter is indestructible—and that even matter has only some electrical charges.*"

When Sri Guruji was asked to define the RSS in one word, he said: "*Hinduism can be defined in one word, 'Om'. But it would take years of study to understand its significance. Likewise RSS can be understood only by attending Shakha everyday.*"

Once making an emotional appeal to workers to complete the RSS work in the manner and measure required, he quoted an example from the famous biography of Dr. Samuel Johnson written by his Secretary Boswell. Once Oliver Goldsmith asked Dr. Johnson : ''Doctor, how many fish in a chain will take it reach from here to the moon?'' Dr. Johnson was nonplussed by this question. Goldsmith himself replied: ''Only one fish will suffice—if it is sufficiently big!'' Sri Guruji said that similarly even a single day would suffice for the completion of RSS work—if only all the Swayamsevaks of the Sangh worked with every atom of their strength with unshakeable faith in the ultimate victory of 'Sanatana Dharma'.

Sri Guruji consistently held the view that a proper history of India had not yet been written. In this context he stated: "*It is ridiculous to divide our national history into Hindu period, Muslim period and British period. History can't be named after rulers; a proper history has to be a history of the people. And so, our entire history is Hindu history.*" This is the quintessence of Hindutva. Bal Gangadar Tilak, Aurobindo Ghosh, Vir Savarkar, Dr. Hedgewar, and Sri Guruji have all built up this great edifice of Hindutva. 'Hindutva' is not just a word. It is history of a great culture and civilisation called 'Sanatana Dharma'. Hinduism is only a derivative, a fraction or a part of Hindutva or Hinduness.

Often Sri Guruji would also add: "*Our history books tend to revolve round Delhi. But Delhi is not India. And in many periods of Indian history, other kingdoms have been bigger than the kingdom of Delhi. Because of these lop-sided history books, our people know little about the Cholas, the Cheras, the Pandyas, the Hoysalas, the Pulakeshins. How many people have even heard of Kharvel of Utkal, one of the greatest kings of Bharatvarsh, who*

controlled much of South-east Asia? Or of Lachit Barphukan, hero of the successful Assamese resistance to Mughal attacks?"

Under Sri Guruji's inspiring, fearless and indomitable leadership, RSS grew by leaps and bounds. In town after town the Sangh Pracharaks would arrive with a few letters of introduction to the local leaders, whether belonging to the Congress, the Hindu Mahasabha, the Arya Samaj or whatever. They would put up themselves in the local *bhavan* of any of these organisations or in a temple or with any well-wisher. His job, often as a teacher, would bring them in touch with many students and teachers. Any existing local Hindu volunteer organization would promptly merge with the new RSS Shakha. With help from local well-wishers and guidance from their seniors in the RSS, the Shakha would grow into a social magnet, attracting promising young men and local VIPs alike, regardless of their caste, class or sect. Soon it would be the strongest organisation in town. Before long it would produce energetic young men to carry the message of Sangh to other towns and even villages. At a time when RSS was growing like wildfire, Sri Guruji said: *"If I were to spend just one day in each Shakha, even a life-time would not suffice to cover the whole country."*

Swami Akhandananda, one of the 16 monastic direct disciples of Ramakrishna Paramahamsa, discerned in Sri Guruji all the potentialities of a Vivekananda re-born. Dr. Hedgewar, the founder of the RSS saw in him a worthy leader of the Sangh. While casting off their mortal coil, both these *mahatmas* had an innate satisfaction—Swami Akhandanandaji for having handed over the torch of spiritualism to a worthy disciple and Dr. Hedgewarji for leaving the Sangh in strong safe hands. As a disciple of the former and successor of the latter, Sri Guruji combined in himself both the roles—both in one, both at once. In him were fulfilled the missions of both blended into one. He established through his example that apparently divergent messages of these two illustrious souls were in reality not only compatible but perfectly identical too. By a lifetime saga of sacrifice and service to Bharatvarsh, Sri Guruji demonstrated that society is merely a manifestation of the *Vishavaroopa*. Emphasising the importance of unity in society amongst the Hindus, Sri Guruji wanted all the Hindus to keep the following poem of William Wordsworth in mind every moment:

"Dust as we are, the immortal spirit grows
Like harmony in music; there is a dark
Inscrutable workmanship that reconciles
Discordant elements, makes them cling
together in one society"

There are two types of people in this world. Those who come into a room and say "well, here I am!" and those who come in and say "Ah! there you are!" Sri Guruji did not consider himself a separate entity, independently of the Sangh. His life was

a *yajna*, an eternal sacrifice at the sacred feet of the *jana* (people), the manifestation of *Janardhana* (God). Sri Guruji's most precious offering in this *Yajna* was his own ego. For Sri Guruji innate humility was just as much the opposite of self-abasement as it was of self-exaltation. He wanted every Swayamsevak to give up the pursuit of individual salvation in favour of an endeavour for corporate self-realisation of the Sangh.

While replying to a civic address at Madurai in December 1949, Sri Guruji aptly observed: "*A post box receives letters, at times very important ones. But the box has no reason to be flattered by them. It is only an intermediary through which letters pass to proper persons in the proper places. The honours which you have bestowed on me I will pass on to those countless workers whom I am privileged to represent.*" On another occasion, dismissing the idea that RSS would suffer incalculably in his absence, he stated with fervour and conviction: "*No particular individual is indispensable. Men may come and men may go, but the society goes on for ever. With me or without me, the Sangh will continue to work and grow because of their inner necessity and intrinsic work.*"

Carlyle in his famous work *'Heroes and Hero Worship'* wrote: "*It is well said, in every sense that a man's religion is the chief fact with regard to him. No great man lives in vain. The history of the world is but the biography of great men. The hero can be poet, prophet, king, priest or what you will, according to the kind of world he finds himself born into.*" These stirring words are totally applicable to Sri Guruji. He would have made his mark anywhere. He was a saint, a sage, a seer in the great Hindu tradition of sages like Vashishta, Bharadwaj, Shankracharya, Yagnavalkya, Vishwamitra, Angirasa and others going back to the dawn of history. In these days of globalisation of Hindus and globalisation of Hindutva, the best homage we can pay to Sri Guruji on the occasion of his birth-centenary on February 24, 2006 is to live up to the great ideals enshrined in the following inspiring words:

> *"We have to live up to his legacy that can help human beings in all corners of our globe to rejuvenate our spirit not to conquer one another, but to conquer oneself; not to destroy, but to build; not to hate, but to love; not to isolate oneself, but to integrate everyone into one global society and to achieve much more in the future to enrich human civilisation to result in the maximum welfare of the maximum number or as in Sanskrit it is called: Loko samasto sukhino shavantu & samasta janaanaam sukhino bhavantu."*

The writer is retired IAS officer & eminent writer

श्रीगुरुजी की दृष्टि में चिरंतन सुख-अखण्ड सुख की संकल्पना


डा. बजरंग लाल गुप्ता

इस पर तो लगभग सभी सहमत हैं कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य सुख प्राप्त करना है। पर प्रश्न यह है कि सुख से आशय क्या है, और मनुष्य को यह सुख कैसे मिल सकता है? इस सम्बन्ध में श्रीगुरुजी ने पश्चिमी चिंतन से भिन्न हिन्दू तत्त्वज्ञान पर आधारित 'चिरंतन सुख– अखण्ड सुख' की संकल्पना दी है, जो अत्यन्त मननीय है।

भौतिक सुख की पश्चिमी आवधारणा एवं उसके दुष्परिणाम

श्री गुरुजी के अनुसार पश्चिमी राष्ट्रों ने सुख की कल्पना केवल भौतिक एवं ऐहिक सुख के रूप में ही की है। अर्थात्, खाना–पीना, वस्त्र प्रावरण, निवास के स्थान, सुखोपभोग, वासना की वृद्धि एवं उसे संतुष्ट करने वाले साधनों की वृद्धि, मनोविनोद के साधन आदि प्राप्त करने का ही सर्वसाधारण लक्ष्य रखा गया है। किन्तु भौतिक सुख की यह अवधारणा अधूरी है और अंततोगत्वा यह असंतोष, अशांति एवं संघर्ष का ही कारण बनती है। श्रीगुरुजी के अनुसार इसके तीन प्रमुख कारण हैं–

(1) विषय–वासनाओं की पूर्ति सर्वथा असम्भव है। वासनाओं की पूर्ति का जितना प्रयास किया जाता है, वे उससे भी अधिक तेज गति से बढ़ती जाती हैं।

(2) सुख वास्तव में भौतिक पदार्थों से वासना पूर्ति करने में नहीं, अपितु वासनाओं के शान्त होने में है।

(3) वासनाओं का उत्तरोत्तर बढ़ते जाना और उस पर सदा असंतोष का बना रहना ही जगत् में बार–बार होने वाले युद्धों का प्रमुख कारण है।

भौतिक सुख–साधनों की प्राप्ति की इच्छा धन–संग्रह को जन्म देती है। अधिकाधिक धन प्राप्ति हेतु शक्ति आवश्यक हो जाती है। भौतिक सुख की अतृप्त क्षुणा की तृप्ति के लिए सबल राष्ट्र शक्ति के आधार पर दूसरे देशों का दमन व शोषण करते हैं। यही प्रवृत्ति अशांति, संघर्ष व युद्ध का कारण बनती है।

चिरंतन सुख - अखंड सुख की संकल्पना

श्री गुरुजी के अनुसार मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्षणिक, अस्थायी, अस्थिर एवं अधूरा सुख

जहाँ हमें मनुष्य जीवन के अस्तित्व एवं उसके सामाजिक- पारिवारिक क्रियाकलापों के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुएँ व सेवाएँ उसे उपलब्ध करानी होंगी, वहीं साथ ही उसके मन, बुद्धि और आत्मा की आवश्कयतापूर्ति के लिए आवश्यक दर्शन, दृष्टिकोण, जीवन मूल्य एव सामाजिक मानवीय सम्बन्धों की भी रचना करनी होगी।

नहीं हो सकता। उसे तो चिरंतन और अखण्ड सुख की साधना करनी है। ऐसा सुख केवल भौतिक वासनाओं की पूर्ति में से नहीं आ सकता। उनकी दृष्टि में सुख वस्तुनिष्ठ नहीं, आत्मनिष्ठ है। अतः जीवन का कार्यव्यापार चलाने के लिए आवश्यक साधन–सामग्रियों की प्राप्ति के साथ–साथ मनुष्य को आत्मविकास के मार्ग की ओर भी अग्रसर होना चाहिए। उसे अपने अन्तःकरण में शाश्वत आनन्द के आदिस्रोत को तलाशने का प्रयास भी करना होगा। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ मनुष्य के मन एवं व्यवहार को ऊपर उठाकर उदात्तभावों की ओर प्रेरित किया जाना आवश्यक है। मनुष्य मन की यह उदात्तता एवं सामाजिक संवेदना ही उसे अधिक स्थायी सुख प्रदान कर सकती है। उनकी सुख की संकल्पना में मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की संतुष्टि की दिशा में सम्यक् एवं संतुलित शरीर से एक साथ आगे बढ़ना आवश्यक है। वे मनुष्य के एकाकी अथवा केवल अपने और अपने परिवार के सुख के पक्षधर नहीं थे, वे तो समाज के सब लोगों के लिए सब समयों पर मिल सकने वाले सुख के प्रस्तोता थे। अर्थात् वे "सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय" अथवा सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु" के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। श्री गुरुजी को आंशिक, खण्डित एवं स्वार्थपूर्ण सुख मान्य नहीं है। वे तो समग्र–समन्वित एकात्म सुख के उपासक हैं। उनकी दृष्टि में 'प्राणिमात्र का पूर्ण कल्याण' ही सदैव हमारा उदात्त आदर्श रहा है।

सुख का आधार परस्परानुकूलता है, संघर्ष नहीं। इसी में से 'समग्र सामाजिक सुख' की कल्पना को जन्म मिला है।

मुख्य विचार-सूत्र

श्रीगुरुजी द्वारा 'सुख' के सम्बन्ध में समय–समय पर प्रकट किये गए विचारों में से मुख्य रूप से निम्नलिखित विचार–सूत्र प्राप्त होते हैं–

1. मनुष्य की सभी क्रियाओं का उद्देश्य 'सुख प्राप्ति' है।
2. सुख क्या है? सुख का एक रूप मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं इन्द्रियजन्य सुख (आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि)– इन्द्रिय तथा उसके विषयों से प्राप्त सुख के रूप में माना है। पश्चिमी चिन्तन "भौतिक सुख" की इसी अवधारणा को स्वीकार करता है।
3. हिन्दू चिन्तन ने 'सुख' की व्यापक कल्पना दी है। रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, शिक्षा आदि की व्यवस्था करना आवश्यक है, पर पर्याप्त नहीं। शरीर के सुख के साथ–साथ मनुष्य को मन, बुद्धि और आत्मा का सुख भी चाहिए। इस प्रकार 'सुख' शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से सम्बन्धित एक बड़ी व्यापक आवधारणा है, जिसे मात्र आर्थिक उपयोगिताओं के रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता। यह एक अनुभवसिद्ध तथ्य है कि मात्र भौतिक एवं आर्थिक वस्तुएँ मनुष्य को सुख नहीं प्रदान कर सकतीं अथवा धन–दौलत व साधन सम्पदा की वृद्धि तथा सुख में हमेशा सकारात्मक सह–सम्बन्ध नहीं देखा जाता। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि मनुष्य

की भौतिक एवं शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन सम्पदा के अभाव में भी मनुष्य–जीवन सुखी नहीं हो सकता। अतः जहाँ हमें मनुष्य जीवन के अस्तित्व एवं उसके सामाजिक– पारिवारिक क्रियाकलापों के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुएँ व सेवाएँ उसे उपलब्ध करानी होंगी, वहीं साथ ही उसके मन, बुद्धि और आत्मा की आवश्कयतापूर्ति के लिए आवश्यक दर्शन, दृष्टिकोण, जीवन मूल्य एव सामाजिक मानवीय सम्बन्धों की भी रचना करनी होगी।

4. सुख आत्मनिष्ठ है वस्तुनिष्ठ नहीं। केवल वस्तुएँ सुख नहीं दे सकती हैं, मनुष्य की भाव–भावनाओं का सुख के साथ गहरा सम्बन्ध है, इसे अधिक अच्छी प्रकार समझा जाना चाहिए। इस बात को एक सीमित संदर्भ में आधुनिक अर्थशास्त्र में भी यह कहकर स्वीकार किया गया है कि वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता वस्तुनिष्ठ नहीं, भावनिष्ठ होती है। एक ही वस्तु किसी एक व्यक्ति को तो उपयोगिता प्रदान कर सकती है, जबकि वही वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति को उपयोगिता नहीं प्रदान कर पाती। उदाहरण के लिए, एक माँसाहारी व्यक्ति के लिए तो माँस उपयोगिता प्रदान करता है, जबकि पूर्णतया शाकाहारी व्यक्ति को उसी माँस में कोई उपयोगिता दिखाई नहीं देती।

5. 'सुख' वासनाओं–इच्छाओं की बढ़ाते जाने में नहीं है, सुख तो वासनाओं–इच्छाओं को कम करते जाने की मानसिकता से मिलता है। इसी दृष्टि से श्री गुरुजी इच्छाओं व आवश्यकताओं को बढ़ाते जाने वाले उपभोक्तावाद के आर्थिक चिन्तन को स्वीकार नहीं करते, अपितु वे तो प्रो. जे.के. मेहता के 'आवश्यकता विहीनता' की दिशा में चलने वाले आर्थिक चिन्तन के समर्थक थे।

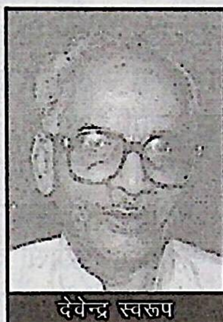
6. मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्षणिक, अस्थायी, आंशिक एवं क्षणभंगुर सुख का न होकर चिरन्तन एवं अखण्ड सुख का होना चाहिए। इसी को उन्होंने 'परमसुख' भी कहा है।

7. समाज के जीवन समस्त क्रियाकलापों के दौरान यह भी ध्यान रखना होगा कि कुल मिलाकर सम्पूर्ण समाज के सुख में वृद्धि हो, जो शोषण से मुक्ति और वितरण की समानता की ओर संकेत करती है। वैसे भी सुख की प्राप्ति मनुष्य अकेला नहीं कर सकता, समाज का सहयोग चाहिए। अतः सुख का आधार परस्परानुकूलता है, संघर्ष नहीं। इसी में से 'समग्र सामाजिक सुख' की कल्पना को जन्म मिला है।

सुख वस्तुनिष्ठ नहीं, आत्मनिष्ठ है। अतः जीवन का कार्यव्यापार चलाने के लिए आवश्यक साधन-सामग्रियों की प्राप्ति के साथ-साथ मनुष्य को आत्मविकास के मार्ग की ओर भी अग्रसर होना चाहिए। उसे अपने अन्तःकरण में शाश्वत आनन्द के आदिस्रोत को तलाशने का प्रयास भी करना होगा।

–लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री;
संघ के उत्तरक्षेत्र संघचालक;
श्री गुरुजी जन्मशताब्दी समारोह
समिति के अखिल भारतीय सचिव

दल नहीं, राष्ट्रहित सर्वोपरि


देवेन्द्र स्वरूप

बात सन् 1959 के जून महीने की है। समूचे देश की आँखें केरल पर गड़ी हुई थीं। रोज समाचार पत्रों के पहले पन्ने पर केरल में चल रहे जन–आंदोलन के फलस्वरूप भीड़ की हिंसा एवं जनता पर पुलिस की गोलीबारी के समाचार छाए रहते थे। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का अन्धानुकरण करके वयस्क मताधिकार पर आधारित जिस राजनैतिक प्रणाली को स्वाधीन भारत ने अपनाया था, उसका पहला विषफल केरल में प्रगट हो चुका था। 1957 के दूसरे आम चुनाव में ही जातिवाद एवं साम्प्रदायिक निष्ठाओं के इर्द–गिर्द घूमने वाली केरल की वोट बैंक राजनीति का लाभ उठाकर एक ऐसा राजनैतिक दल सत्ता में आ गया था, जो संसदीय लोकतंत्र को पूरी तरह अस्वीकार करता था। और जिसकी देश बाह्य निष्ठाएँ सर्वज्ञात थीं। अविभाजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी केवल पैंतीस प्रतिशत मत और आधी से कम सीटें पाकर पाँच निर्दलीय विधायकों का समर्थन जुटा कर केरल की एक सौ सत्ताइस सदस्यीय विधानसभा में 2 मतों के बहुमत से सरकार बनाने में सफल हो गई थी। कट्टर स्तालिनवादी ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद का 5 अप्रैल 1957 को मुख्यमंत्री पद पर अभिषेक हो गया था। उस समय पूरे भारत पर कांग्रेस का एकछत्र शासन था। केन्द्र में जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे। स्वाधीन भारत में कम्युनिस्ट सरकार बनने का यह प्रथम उदाहरण था। स्वाभाविक ही राष्ट्रवादी मानस बहुत क्षुब्ध था कि हमारी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर एक ऐसा दल सत्तारुढ़ हो गया जिसकी उस प्रक्रिया में तनिक भी आस्था नहीं है और वह भी केवल पैंतीस प्रतिशत मतों के सहारे।

कम्युनिस्ट सरकार की कट्टरवादी जनविरोधी नीतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप धीरे–धीरे सरकार विरोधी आंदोलन उभरने लगा। कम्युनिस्टों को भरोसा था कि केन्द्र में नेहरूजी के प्रधानमंत्री रहते उनकी सरकार को कोई खतरा नहीं आएगा। क्योंकि नेहरू जी का समाजवाद की ओर झुकाव था और कम्युनिस्ट नेताओं से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध भी थे। किन्तु वे यह नहीं समझ पाए कि नेहरू जी के साथ वैचारिक निकटता होते हुए भी नेहरू जी सत्ता पर अपने एकाधिकार पर कम्युनिस्टों का यह आघात कदापि सहन नहीं कर पाएँगे। फरवरी 1959 में नेहरू जी ने अपनी पुत्री इन्दिरा गाँधी को कांग्रेस का अध्यक्ष पद सौंप दिया और उनके माध्यम से केरल की कम्युनिस्ट सरकार के विरुद्ध जनान्दोलन को अपना अप्रत्यक्ष आशीर्वाद प्रदान कर दिया। इन्दिरा जी ने कांग्रेस अध्यक्ष बनते ही केरल की कम्युनिस्ट सरकार के विरुद्ध जनसंघर्ष का बिगुल बजा दिया। केन्द्र और शेष सभी राज्यों में सत्तारूढ़ कांग्रेस का समर्थन पाते ही केरल में जनान्दोलन पूरी उग्रता के साथ भड़क

उठा। चर्च ने पहले ही नम्बूदरीपाद सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। 12 जून को नायर सर्विस सोसाइटी के वयोवृद्ध नेता श्री मन्नथ पद्मनाभन के नेतृत्व में एक सर्वदलीय मोर्चे ने 'कम्युनिस्ट सरकार हटाओ' आन्दोलन की विधिवत घोषणा कर दी। केरल में उग्र जन प्रदर्शनों और सरकार दमन का चक्र घूमने लगा। इस आंदोलन ने 'राष्ट्रवाद बनाम कम्युनिज्म' व 'लोकतंत्र बनाम अधिनायकवाद' का रूप धारण कर लिया था।

इस प्रक्षोभक वातावरण में कम्युनिस्टों की भौतिकवादी विचारधारा, अधिनायकवादी प्रवृत्ति एवं देश–बाह्य निष्ठाओं के कारण उनसे मौलिक वैचारिक मतभेद व वितृष्णा रखने वाले संघ के स्वयंसेवकों की सहानुभूति सहज की इस कम्युनिस्ट विरोधी आंदोलन के साथ थी। मैं भी इसका अपवाद नहीं था। वस्तुतः श्रीगुरुजी ही स्वाधीन भारत में कम्युनिस्ट विचारधारा और कार्यशैली के बौद्धिक धरातल पर सबसे सशक्त खतरा बन कर उभरे थे। उन्होंने बहुत पहले ही कम्युनिस्ट खतरे के प्रति आगाह करते हुए गृहमंत्री सरदार पटेल को 14 सितम्बर 1948 को अपने पत्र में लिखा था, "संघ पर प्रतिबंध लगाए जाने के बाद से युवा वर्ग, विशेषतः विद्यार्थीगण कम्युनिज्म की ओर अधिकाधिक झुकने लगा है। ऐसा समाचार दक्षिण से तथा उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्रों से प्राप्त हुआ है। उनका प्रचार बढ़ रहा है। इस खतरे की सूचना मुझे ही आपको देनी चाहिए इसकी आवश्यकता नहीं है। परंतु इस देश–बाह्य मतप्रणाली को बढ़ते देखकर भी अकर्मण्य होकर बैठे रहना मेरे लिए कितना कठिन होगा और मेरे हृदय को कितनी पीड़ा देता होगा इसका आप विचार करें। क्योंकि मुझे विश्वास है कि संघ का कार्य पूरी तरह आरोप मुक्त और वैद्य घोषित होने पर इस संकट से युवा वर्ग की बहुत मात्रा में रक्षा कर सकता है। मैं तो यही समझता हूँ कि आप अपनी सरकार की शक्ति और हम अपनी सांस्कृतिक संघ शक्ति अगर साथ–साथ लगाएँ तो इस संकट से शीघ्र मुक्त हो सकते हैं। अपने पड़ोसी देशों में इस बाह्य प्रणाली की यशस्विता की लहर दौड़ रही है, उससे मैं अत्यधिक चिंतित हूँ। (श्रीगुरुजी विचार दर्शन, खंड 2 पृ. 17)

कम्युनिस्ट भी संघ को अपना मुख्य वैचारिक शत्रु मानते थे। 1946 से ही उन्होंने संघ के विरुद्ध विषवमन प्रारम्भ कर दिया था। गाँधी हत्या से उद्वेलित जनमानस को संघ के विरुद्ध भड़काने का उन्होंने जी–तोड़ प्रयास किया था। प्रतिबंध उठने के पश्चात् श्री गुरुजी के देशव्यापी स्वागत समारोहों में भी कई जगह उन्होंने हिंसा व बाधा डालने की कोशिश की थी। अतः हमारी संवैधानिक प्रणाली की कमजोरी का लाभ उठा कर केरल में कम्युनिस्ट शासन स्थापित होने की घटना से संघ के स्वयंसेवकों के अंतःकरण बहुत ही प्रक्षोभित थे। ऐसी स्थिति में केरल का कम्युनिस्ट विरोधी आंदोलन हर समय मेरे मस्तिष्क पर छाया रहता था। उन दिनों मैं लखनऊ में 'पांचजन्य' के संपादकीय विभाग का अंग था। अतः, हम लोगों ने इस आंदोलन के पक्ष में देश के जनमत को जगाने की दृष्टि से 'पांचजन्य' का केरल विशेषांक निकालने की योजना बनाई और उस विशेषांक के लिए श्री गुरुजी का आशीर्वाद पाने के लिए

उन्हें पत्र लिखकर प्रार्थना की। हमें पूर्ण विश्वास था कि भारत की धरती पर स्थापित प्रथम कम्युनिस्ट मंत्रिमंडल को हटाने हेतु चल रहे आंदोलन को श्री गुरुजी का समर्थन एवं आशीर्वाद अवश्य प्राप्त होगा। किंतु दिनांक 29 जून 1959 को उनके हस्तलेख में लिखा लम्बा पत्र पाकर मैं सकते में आ गया। इस पत्र में केरल आंदोलन के बारे में अपने व्यक्तिगत मत को व्यक्त किया था और वह प्रकाशन के लिए नहीं था, इससे उस पत्र का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। वह पूरा पत्र इस प्रकार है–

परम प्रिय श्री देवेन्द्रजी,

सस्नेह नमस्कार!

मैं 26 जून 1959 को अपराह्न मैं नागपुर पहुँचा। अब यहाँ प्रांत प्रचारकों की बैठक माननीय सरकार्यवाह जी के आदेशानुसार 11 जुलाई 1959 से चार दिन चलेगी। उसमें मेरे लिए प्रवासादि का आदेश प्राप्त होगा। फिर जैसा निश्चित किया जाएगा, वैसा करूँगा।

'पांचजन्य' का केरल की स्थिति के विषय में अंक प्रकाशित करने की आपकी योजना अच्छी है। वहाँ की परिस्थिति से मैं प्रत्यक्ष रूप से अभिज्ञ नहीं हूँ। वृत्तपत्रों से जो समाचार प्राप्त होते हैं, उन पर कितना आधार मिलता है वह तो आपको विदित है ही। उक्त बैठक में कुछ ठीक जानकारी मिलने की आशा है। पूना में तो मित्रवर पं. दीनदयाल उपाध्यायजी आदि विचार–विमर्श करने में जुटे हैं। उनके पास प्रत्यक्षदर्शी बंधुओं से योग्य वृत्त आया होगा। उसका भी कुछ ज्ञान, कुछ अंशों में ही क्यों न हो, उक्त बैठक के समय होने की संभावना है। तब तक कुछ विचार प्रकट करना मेरे लिए ठीक नहीं होगा।

किंतु एक बात स्पष्ट है कि जनतंत्राधिष्ठित रचना तथा प्रचलित आधारभूत संविधान को मानना हो तो जो आंदोलन छेड़ा गया है, वह समर्थनीय नहीं दिखता। अब किसी के बल प्रयोग से– चाहे वह सत्याग्रहादि आंदोलनों के रूप में ही प्रयुक्त क्यों न हो– सत्ताधिष्ठित दल को अपदस्थ करना एवं स्वयं सत्ता प्राप्त करना उचित दिखता हो, संविधान के प्रति सर्वथा अनादर है।, 'माईट इज राईट'– यही जिनका सिद्धांत हो, उनकी दृष्टि से सब प्रकार के अव्यवस्थापूर्ण कार्यकलाप ठीक ही हैं। आजकल केरल में सत्ताधिष्ठित दल अराष्ट्रीय है– यह जब तक निःसंदिग्ध रूप से केन्द्रीय शासन तथा संविधान घोषित नहीं करता, तब तक संविधान पर श्रद्धा रखने वाले अभी चल रहे आंदोलन का समर्थन कर सकेंगे, ऐसा मैं नही समझता और अधिक कुछ सोचना सद्यः स्थिति के ज्ञान को देखते हुए संभव नहीं।

शेष कुशल। श्री तिलक सिंह, श्री मनमोहन आदि 'पांचजन्य' परिवार को तथा स्वयंसेवक बंधुओं को सादर नमस्ते।

आपका

मा.स. गोलवलकर

(श्रीगुरुजी समग्र, खण्ड 7, पृ. 318)

इस पत्र को एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज कहा जा सकता है। इससे प्रगट होता है कि अत्यन्त विषम, क्षोभजनक एवं आंदोलनात्मक परिस्थिति में भी उनके विचार करने का ढंग क्या था, किस प्रकार वे चारों

ओर के वातावरण से अप्रभावित रह कर, दलीय भावना से ऊपर उठकर राष्ट्र के दूरगामी भविष्य पर दृष्टि केन्द्रित कर राष्ट्रजीवन में स्वस्थ परंपराओं की स्थापना की दिशा में ही विचार करने में समर्थ थे। भारतीय जनसंघ का तब तक निर्माण हो चुका था। दीनदयालजी जैसे अनेक श्रेष्ठ स्वंयसेवक उसमें सक्रिय थे। किंतु श्री गुरुजी राष्ट्रीय प्रश्नों पर जनसंघ की दलीय दृष्टि से बँध कर सोचने को तैयार नहीं थे। वस्तुतः प्रतिस्पर्धी दलीय राजनीति के प्रति अपनी वितृष्णा जनसंघ के निर्माण के पूर्व दिसंबर 1949 में ही इन शब्दों में व्यक्त की थी–

"लोग चुनावों में देश का भला करने के भाव से नहीं, दलगत स्वार्थ लेकर आते हैं। . ..सेवा की संपूर्ण प्रवृत्ति भी दलगत स्वार्थ में फँस जाती है। दलगत स्वार्थ और अनुशासन ही सम्मुख रह जाता है और 'राष्ट्र' दृष्टि से ओझल हो जाता है। लोग कहते हैं कि दल बनाकर भी ऐसा हो सकता है कि दल के संस्कार न हों, और मनुष्य ऐसा न बने, किंतु ऐसा संभव नहीं है। ऐसा मनुष्य आज तक कोई हुआ नहीं। यदि इतना श्रेष्ठ भाव हो तो दल और पक्ष बनाने की आवश्यकता ही क्या, फिर चरित्रहीनता की इतनी रट क्यों? दल बनाकर दलगत स्वार्थ से ऊपर उठने की बात असंभव है।" (ध्येय दर्शन, लखनऊ, 1949 पृ. 43)

श्रीगुरुजी की यह चेतावनी केरल संकट के समय साकार रूप लेकर सामने खड़ी थी। एक ओर तो कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रति सहानुभूति रखने वाले और समय–समय पर उनसे समर्थन पाने वाले जवाहरलाल नेहरू की कांग्रेस पार्टी और उनकी पुत्री इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में कम्युनिस्टों से सत्ता वापस छीनने के लिए आंदोलन का रास्ता अपना रही थी, दूसरी ओर कम्युनिस्ट विचारधारा को पूरी तरह अस्वीकार करने वाले और कम्युनिस्टों की देश–बाह्य निष्ठा के प्रति वितृष्णा रखने वाले श्री गुरुजी उस आंदोलन को संविधान विरोधी होने के कारण असमर्थनीय मान रहे थे। नेहरू जी विचारधारा से अधिक महत्त्व दल और सत्ता को देते थे तो श्री गुरुजी दलीय हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रजीवन में स्वस्थ परंपराओं के निर्माण को देते थे। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कम्युनिस्टों से सत्ता छीनने के लिए उस समय मुस्लिम लीग जैसी संस्थाओं से गठबंधन करने में संकोच नहीं किया। श्रीगुरुजी की दृष्टि में एक निर्वाचित सरकार को आंदोलन द्वारा हटाने का प्रयास संविधान विरोधी था। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे इस संवैधानिक रचना को भारत के लिए उपयुक्त मानते थे। उन्होंने पहले दिन से इस संविधान को विदेशी एवं अनुपयुक्त घोषित किया था।

वे पूरी तरह समझते थे कि केरल संकट

संघ की 'एकचालकानुवर्ती' रचना को अधिनायकवाद कहने वाले आलोचकों के लिए तो यह भारी धक्का ही है कि उस अधिकनायकवादी संगठन का सर्वोच्च नेता 'सरकार्यवाह जी के आदेशानुसार आयोजित प्रांत प्रचारकों की बैठक' से अपने लिए प्रवासादि के आदेश प्राप्त करे। क्या इससे अधिक लोकतांत्रिक रचना किसी अन्य दल में उपलब्ध है?

उस संविधान रचना के कारण ही पैदा हुआ है। किन्तु उस आंदोलन के बारे में उनका तर्क था कि "जनतांत्रिक रचना तथा प्रचलित आधारभूत संविधान को मानना हो तो" यह आंदोलन "समर्थनीय नहीं दिखता"। उनकी दृष्टि में वह "संविधान के प्रति सर्वदा अनादर" होगा। स्वयं सत्ता पाने के लिए संविधान के अंतर्गत सत्ताधिष्ठित दल को आंदोलन द्वारा हटाने से 'माईट इज राईट' के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करना होगा। यद्यपि श्रीगुरुजी कम्युनिस्ट विचारधारा को अमानवीय एवं देश बाह्य निष्ठाओं के कारण कम्युनिस्ट आंदोलन को अराष्ट्रीय मानते थे, तथापि वे ऐसे किसी आंदोलन को अपना समर्थन देने को तैयार नहीं थे जो केवल दलगत राजनीति के कारण एक दल को सत्ता से हटाकर स्वयं सत्ता हथियाने की आकांक्षा से प्रेरित हो। श्रीगुरुजी को संविधान के प्रति श्रद्धा रखने वाले लोगों का यह व्यवहार असह्य था कि एक ओर तो कम्युनिस्ट विचारधारा की सराहना की जाए, लोकतंत्र में विश्वास न रखने वाली कम्युनिस्ट पार्टी को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में चुनाव लड़ने की अनुमति दी जाए और दूसरी ओर जब वह दल उसी संवैधानिक प्रक्रिया के माध्यम से सत्तारुढ़ हो जाए तो उसे सत्ता से हटाने के लिए हिंसक आंदोलन की सृष्टि की जाए। श्री गुरुजी का कहना था कि यदि इस संविधान पर तुम्हारी सच्ची श्रद्धा है तो इसके अंतर्गत सत्तारूढ़ होने पर किसी भी दल के शासन को तब तक सहन करो जब तक कि संवैधानिक पद्धति से उसे सत्ताच्युत करने की स्थिति पैदा न हो और यदि समझते हो कि वह दल अराष्ट्रीय है तो निःसंदिग्ध शब्दों में उसे संविधान के भीतर अराष्ट्रीय घोषित करो, ताकि उसे चुनाव लड़ने का अधिकार न रहे और वह संविधान द्वारा प्राप्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया का दुरुपयोग न करने पाए। किंतु किसी दल को अराष्ट्रीय घोषित करने के पूर्व केन्द्रीय सरकार को यह सिद्ध करने के लिए निःसंदिग्ध प्रमाण भी प्रस्तुत करने होंगे।

श्रीगुरुजी की दृष्टि में एक निर्वाचित सरकार को आंदोलन द्वारा हटाने का प्रयास संविधान विरोधी था।

इस पत्र से दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह उभरकर सामने आता है कि अपने इस व्यक्तिगत मत को उन्होंने संगठन का मत नहीं कहा और उसका सार्वजनिक प्रकाशन नहीं किया। संगठन के मत को बनाने का अधिकार उन्होंने माननीय सरकार्यवाह जी के आदेशानुसार होने वाली प्रांत प्रचारकों की चार दिन की बैठक और पूना में एकत्र जनसंघ नेतृत्व पर छोड़ दिया। वे समाचार पत्रों की अपेक्षा अपने कार्यकर्ताओं के प्रत्यक्षदर्शी वृत्त को अधिक विश्वसनीय मानते थे और उसके प्राप्त होने तक सार्वजनिक रूप से कोई मत प्रकट करना उचित नहीं समझते थे। संघ के कार्यकर्ता कई बार भावावेश में अथवा तात्कालिक प्रक्रियाओं के दबाव में बहकर श्री गुरुजी के विचारों को पूरी तरह समझ नहीं पाते थे, उन्हें स्वीकार नही करते थे, तो भी श्री गुरुजी उन्हें उनके निर्णय से परावृत्त नहीं करते थे और एक अनुशासित स्वयंसेवक के नाते उस निर्णय का पूरी तरह पालन करते थे। केरल आंदोलन के बारे में ऐसा ही हुआ। हम लोग श्री गुरुजी के

विचार की गहराई को, उनकी दृष्टि को समझ नहीं पाए और इसलिए हमने 'पांचजन्य का केरल विशेषांक' प्रकाशित करके कम्युनिस्ट विरोधी केरल आंदोलन को पूरा समर्थन प्रदान किया। जनसंघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा ने भी 8 जुलाई को अपनी पूना बैठक में एक प्रस्ताव पारित करके इस आंदोलन के समर्थन में 18 जुलाई को देशभर में 'केरल दिवस' मनाने का आह्वान किया। संघ की 'एकचालकानुवर्ती' रचना को अधिनायकवाद कहने वाले आलोचकों के लिए तो यह भारी धक्का ही है कि उस अधिकनायकवादी संगठन का सर्वोच्च नेता 'सरकार्यवाह जी के आदेशानुसार आयोजित प्रांत प्रचारकों की बैठक' से अपने लिए प्रवासादि के आदेश प्राप्त करे। क्या इससे अधिक लोकतांत्रिक रचना किसी अन्य दल में उपलब्ध है?

वे समाचार पत्रों की अपेक्षा अपने कार्यकर्ताओं के प्रत्यक्षदर्शी वृत्त को अधिक विश्वसनीय मानते थे और उसके प्राप्त होने तक सार्वजनिक रूप से कोई मत प्रकट करना उचित नहीं समझते थे।

किन्तु केरल प्रकरण ने श्रीगुरुजी के पत्र के इस अंश पर हमारा ध्यान केन्द्रित किया कि इस संकट की जड़ ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के अन्धानुकरण पर आधारित स्वाधीन भारत के संविधान में है अतः उस संविधान की पुनर्समीक्षा अत्यंत आवश्यक है। इस संकेत को समझ कर 'पांचजन्य' ने उसी समय जुलाई, अगस्त और सितम्बर 1959 के अंकों में इस संविधान की अनुपयुक्तता के बारे में मेहरचंद महाजन, मीनू मसानी, क.मा.मुंशी, सत्यकेतु विद्यालंकार जैसे मनीषी राजनेताओं के लेखों की शृंखला प्रकाशित की। किन्तु इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि वह बहस आगे नहीं बढ़ पाई और आज देश अपने को गंभीर संवैधानिक संकट में फँसा पा रहा है। भ्रष्टाचार में डूबी विखंडित राजनीति के वर्तमान दृश्य को देखकर राष्ट्र इस समय इस विदेशी संविधान के बारे में श्रीगुरुजी की मर्मभेदनी दृष्टि को समझने की मनःस्थिति में पहुँच गया है और इस बारे में प्रबल गैर–राजनैतिक, नैतिक–बौद्धिक आंदोलन की प्रतीक्षा कर रहा है। संभवतः नियति ने यही भूमिका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नामक विशालतम राष्ट्रनिष्ठ सांस्कृतिक कर्म आंदोलन के लिए निर्धारित की है।

—लेखक प्रसिद्ध इतिहासकार व स्वतंत्र पत्रकार

भारत अखंड होगा!

1955 में जब श्री गुरुजी का पू. पेजावर स्वामी जी से मिलना हुआ था, उस समय स्वामी जी ने गुरुजी से पूछा था कि ''अपना देश फिर से अखण्ड हो सकता है क्या?'' श्री गुरुजी ने उत्तर दिया 'हम स्नान करते समय रोज 'गंगे च, यमुने च ....' में 'सिंधु' का भी उच्चारण, स्मरण करते हैं। इसका तात्पर्य है कि सिंधु के उस पार के सब भाग अपने ही हैं।'' स्वामी जी ने पूछा ''यह कब होगा?'' गुरुजी ने कहा- 'हिन्दू समाज के असंगठित होने के कारण अपना देश विभाजित हो गया, एक बार फिर से हिन्दू सुसंगठित और समर्थ होकर खड़े हो जाएँगे, तब भारत के अखण्ड होने का दिन दूर नहीं रहेगा।''

राष्ट्रीय अस्मिता - गहराते संकट और समाधान


डा. मुरली मनोहर जोशी

पिछले लगभग एक दशक से विभिन्न पश्चिमी विद्वानों में राष्ट्रों की जिन समस्याओं पर विमर्श हुए हैं, उनमें 'राष्ट्रीय–अस्मिता' पर काफी गंभीर चर्चाएँ हुई हैं। विशेषकर 11 सितंबर 2001 के पश्चात् अमेरिका में इस प्रश्न पर काफी चिंतन शुरू हुआ । प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान सेम्युअल हंटिंगटन ने यह प्रश्न उठाया कि "हम (यानि अमेरिकन) कौन हैं"? उनका कथन है कि सितंबर में हुए तालिबानी आक्रमण से पूर्व चार्ल्स स्ट्रीट में केवल दो स्थानों पर अमेरिकन झंडा लहरता दिखाई देता था। पर 11 सितंबर के पश्चात् उसी सड़क के मकानों में बहुत से अमेरिकी झंडे फहरते हुए दिखाई दिए। क्योंकि अमेरिका के नागरिक गृहयुद्ध के पश्चात् अपनी राष्ट्रीय पहचान का मुख्य प्रतीक अपना झंडा मानते थे तो ऐसा लगता है कि तालिबानी आक्रमण के पश्चात् न केवल चार्ल्स स्ट्रीट के धनाढ्यों ने बल्कि सम्पूर्ण अमेरिका ने अपनी राष्ट्रीयता को पुनः स्मरण किया और लाखों की संख्या में घरों पर झंडे लगाकर अपनी अस्मिता का परिचय दिया। कहते हैं कि अकेले 'वार्ल–मार्ट' की दुकानों से 11 सितंबर को 1,60,000 और अगले दिन 2,50,000 झंडे बिके। हंटिंगटन के अनुसार झंडों में ऐसी बेतहाशा वृद्धि अमेरिकावासियों में अकस्मात् उत्पन्न हुई 'राष्ट्रीय–पहचान' का प्रतीक है।

हंटिंगटन प्रश्न करते हैं कि क्या अमेरिका को अपनी 'अस्मिता' का स्मरण कराने के लिए और राष्ट्रीय एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए ओसामा बिन लादेन की आवश्यकता है? और ऐसे आक्रमण बहुत दिनों तक नहीं हों तब क्या अमेरिकावासी 11 सितंबर के पूर्व जैसी क्षरणशील राष्ट्रभावना एवं विघटनवादी प्रवृत्तियों के पुनः शिकार हो जाएँगे? वे कहते हैं कि इस बात की गहन मीमांसा होनी चाहिए, कि 'अमेरिकन' होने का मतलब क्या है और अमेरिकीपन के मूलतत्त्व क्या हैं? अमेरिकनों को यह जानना, समझना चाहिए कि "हम" अर्थात् अमेरिकन कौन हैं और "हमारी" जड़ें कहाँ हैं? और अगर हम "हम" हैं तो वे कौन से तत्त्व हैं जो हमें "उन" से, जो हम नहीं हैं, पृथक बनाते हैं। हमारी विशिष्ट पहचान क्या है? उन्होंने यह प्रश्न भी उछाला है कि "हम" अपने को ठीक से जाने बिना 'उन" से व्यवहार करने की कसौटी कैसे निर्धारित कर सकते हैं? एक प्रकार से बिना अपने को जाने कोई अपना हित–अनहित कैसे जान सकता है? इसी तरह अमेरिकी विदेश नीति की दिशा निर्धारण करने के लिए भी "हमें" अपने को ठीक से जानना समझना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में किसी भी राष्ट्र को राष्ट्रीय अस्मिता का अभिज्ञान होना आवश्यक है।

सच तो यह है कि पहचान के संकट से विश्व के अनेक देश त्रस्त हैं। उदाहरणार्थ जापान में यह सार्वजनिक बहस छिड़ी हुई है कि जापान की पहचान एशियाई है या पश्चिमी देशों वाली? ईरान में भी पहचान के मामले में बहस है और दक्षिणी अफ्रीका तो पहचान की खोज में जूझ रहा है। चीन, ताइवान, सीरिया, ब्राजील – सब

अपनी जड़ों की खोज कर रहे हैं। कनाडा में वर्षों से इस प्रश्न पर खेमेबंदी चली आ रही है, ब्रिटिश आइल्स के लोग अब यह पूछ रहे हैं कि वे मूलतः ब्रिटिश हैं या उत्तरी अटलांटिका समूह के अंग हैं? तुर्की में भी पहचान की यह बहस जोरों पर है कि वह योरोपीय सभ्यता के निकट है या पश्चिम एशिया वाला है, और रूस में भी पुरानी बहस, कि वह यूरोपियन देश है अथवा पूर्णतः पृथक यूरेशियन है, फिर से लोगों के मन में घुमड़ रही है। यूरोपियन यूनियन में किन तत्त्वों के आधार पर स्थायी एकजुटता बनी रह सकेगी, यह प्रश्न भी चर्चित रहता है और न केवल छोटे देश अपनी पृथक पहचान बचाए रखने के लिए चिंतित हैं, अपितु बड़े देश भी अपनी सांस्कृतिक एवं भाषाई पहचान की विशिष्टताओं को सुरक्षित रखने के लिए निरंतर सतर्क रहते हैं। एक बाजार और एक संसद बनाने के बाद आर्थिक, राजनैतिक प्रश्नों के कुछ समाधान भले ही हुए हों पर 'अस्मिता' के प्रश्न तो बचे ही हुए है। यूरोप में गए दशको की घटनाएँ इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में यह जानना, समझना भी जरूरी है कि भारत की अपनी विशिष्ट पहचान क्या है? क्या भारत के सामने भी पहचान का कोई संकट है? संविधान में जब कहा गया "हम भारत के लोग" तो यह "हम" कौन हैं? हमारी जड़ें कहाँ हैं? इसे जाने बिना हम शत्रु मित्र का विवेक कैसे करेंगे? अपने हित–अनहित का निर्धारण कैसे करेंगे? अतः यह जानना आवश्यक है कि वह क्या है जो हमें अपनी अस्मिता का ज्ञान कराता है? और क्या हमें भी अपनी अस्मिता का ज्ञान कराने के लिए किसी बाह्य आक्रमण की आवश्यकता है? या इसका कोई स्थायी अधिष्ठान भी है? इन सभी पहलुओं पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है। और जब देश राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी की जन्मशताब्दी मनाने जा रहा है तब इन प्रश्नों पर विचार करने का इससे बढ़कर अवसर और कौन सा हो सकता है? श्री गुरुजी भारत की अस्मिता के सबसे प्रखर व्याख्याताओं में अग्रगण्य थे और इस अस्मिता के प्रजागरण और उसे संपुष्ट करने के लिए आजीवन तप करते रहे। उनके विचारों की सार्थकता आज पहले से भी अधिक है। आइए राष्ट्र की अस्मिता के संबंध में कुछ सोचें।

राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है और मनुष्य एक सचेतन प्राणी है। अपना अस्तित्व–बोध होना ही चेतन की पहचान मानी जाती है। एक दृष्टि से जीवन का अर्थ ही अपने अस्तित्व से परिचित होना है। जीवधारियों में मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रति सबसे अधिक सजग है। वह कहता है कि मैं केवल 'अस्तित्व' ही नही हूँ वरन् 'व्यक्तित्व' भी हूँ। यह व्यक्तित्व ही है, जो उसे अन्यों से पृथक बनाता है। इसी में उसके अस्तित्व की सार्थकता है। अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखना ही आत्मसम्मान का द्योतक है। स्वाभिमानशून्य व्यक्ति सच्चे अर्थों में कोई व्यक्तित्व नहीं होता। वह अधिक से अधिक अस्तित्व मात्र रह जाता है। यही स्वाभिमान व्यक्ति की अस्मिता का द्योतक है। जो व्यक्ति अपनी अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकता, वह मणिहीन सर्प की भाँति अपनी श्री खो बैठता है, उसका तेजोभंग हो जाता है और उसका जीवन निरर्थक हो जाता है, कई बार तो अस्तित्व बोध ही लुप्त हो जाता

है। 'अस्मिता' मानव की स्वतंत्रता का मापदंड है। अस्मिता पर आघात उसकी स्वतंत्रता पर आघात है। अस्मिता का संकट उसकी स्वतंत्रता एवं अस्तित्व का संकट है। अस्मिता के आधारभूत तत्त्वों के विनाश का मतलब व्यक्ति के अस्तित्व को नष्ट करने के सिवाय और कुछ नहीं होता।

मनुष्य की भाँति समाज भी सजीव निकाय है। राष्ट्रों का निर्माण मनुष्यों के कृत्रिम संयोग से नहीं हुआ करता। जैसे होटल में रहने वाले एक परिवार नहीं बनते, वैसे ही मनुष्यों की भीड़ का नाम समाज या राष्ट्र नहीं होता। मनुष्य समाज में जन्म लेता है और समाज व्यक्तियों से बनता है। विश्व में हमें विभिन्न समाजों का अस्तित्व दिखाई देता है। ये समाज एक–दूसरे से ठीक उसी तरह पृथक दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे एक मनुष्य दूसरे से। प्रत्येक राष्ट्र का अपना एक अलग वैशिष्ट्य है, जो उसे निःसर्ग से ही मिलता है।

प्रत्येक राष्ट्र एक स्वयंभू जीवमान इकाई है। अतः प्रत्येक राष्ट्र में अस्तित्व बोध होना सहज स्वाभाविक है। जैसे 'मैं' एक व्यक्ति हूँ, मेरा एक पृथक व्यक्तित्व है; उसी प्रकार हम राष्ट्र हैं, हमारी एक राष्ट्रीय पहचान भी है। व्यक्ति का जीवन तो नश्वर है, पर राष्ट्र चिरजीवी है। अतः राष्ट्र की पहचान के तत्त्व शाश्वत होंगे। हम एक राष्ट्र हैं तो फिर राष्ट्रीय स्वाभिमान, उसके प्रति गौरव व आदर एवं उसके संरक्षण की स्वाभाविक इच्छा रखना अवश्यंभावी है। प्रत्येक राष्ट्र की अस्मिता भी उसी तरह महत्त्वपूर्ण है, जिस तरह किसी मनुष्य का व्यक्तित्व। यह अस्मिता ही राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति है या यूँ कहें कि राष्ट्र के अस्तित्व का अधिष्ठान है। इस राष्ट्रीय चेतना के लिए भारतीय मनीषा ने 'चिति' शब्द का प्रयोग किया है। इसी के उदय से राष्ट्र में आंतरिक तेज एवं बल उत्पन्न होता है, जो राष्ट्र को सब प्रकार से निरामय रखता है। इसे 'विराट' कहा जाता है। चिति के उदय और विराट के जागरण से राष्ट्र सब प्रकार के संकटों से सुरक्षित रहता है। यही राष्ट्रों की स्वाधीनता का मापदंड है। अस्मिता या चिति खण्डित हुई तो विराट क्षीण हो जाएगा। फिर राष्ट्र के विखंडित होने में देर नहीं लगती। ऐसी स्थिति में राष्ट्र की स्वाधीनता पर संकट आ जाता है। इस दृष्टि से राष्ट्र की अस्मिता ही उसकी स्वाधीनता की शर्त है। अतः राष्ट्र के सभी घटकों में एक ही चिति की सर्वसमान व्याप्ति राष्ट्रीय एकता, अखंडता एवं सुरक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र अपनी अस्मिता को अखंड रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसका सर्वविध संरक्षण करता है। अपने प्रत्येक घटक को इस अस्मिता की रक्षा के लिए सदा सन्नद्ध बनाए रखता है। अस्मिता का संकट राष्ट्र के अस्तित्व का सबसे गहरा संकट हुआ करता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र अपनी अस्मिता पर आने वाले हर संभव अंतर्बाह्य संकट के प्रति सावधान रहता है। अपनी अस्मिता को नष्ट या कुंठित करने की क्षमता रखने वाले तमाम तत्त्वों का निर्ममतापूर्वक उन्मूलन करता है। इस कार्य में तनिक भी चूक राष्ट्र के विनाश को निमंत्रण देना है।

हाल की कुछ घटनाओं से यह प्रत्यक्ष होता है कि जब चिति एवं विराट जागृत रहते हैं, तब सब प्रकार के संकट का सामना करने के लिए राष्ट्र तत्पर हो जाते हैं। सितम्बर 2001 की

घटनाओं पर अमेरिकी प्रतिक्रिया (भले ही उससे कोई सहमत हो या असहमत), ब्रिटेन में आतंकवादी विस्फोटों पर वहाँ के प्रधानमंत्री का वक्तव्य कि यह विस्फोट ब्रिटिश जीवन पद्धति पर आक्रमण है और हम उसका मुकाबला करेंगे, रूस में हुई आतंकवादी घटनाओं पर राष्ट्रपति पुतिन द्वारा उठाए गए कदम इसी ओर संकेत करते हैं। इतना ही नहीं जर्मनी का एकीकरण, यूक्रेन का 300 वर्ष बाद स्वतंत्र होना, यहूदियों का शताब्दियों के निर्वासन के बाद इस्रायल की स्थापना करना आदि इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि चिति के उदय और विराट के जागरण पर ही राष्ट्रों का अस्तित्व निर्भर करता है। ऐसे भी उदाहरण हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि चिति के अवपात से विराट क्षीण हो जाता है और राष्ट्र टूट कर बिखर जाते हैं या अपनी स्वाधीनता खो बैठते हैं।

क्या भारत की अस्मिता सुरक्षित है? क्या उस पर चतुर्दिक आक्रमण नहीं हो रहे। हमारे राष्ट्र की उन सबके बारे में क्या प्रतिक्रिया है? इन आक्रमणों का स्वरूप क्या है? उद्देश्य क्या है? इसे थोड़ा गहराई से समझने का प्रयास करें।

भारत पर आक्रमणों की यह कहानी बहुत पुरानी है। उसकी चर्चा विस्तारभय से करना उचित नहीं, पर इतना तो समझना जरूरी है कि बारह सौ वर्षों तक आक्रमणकारियों से निरंतर संघर्ष किया इसी भारत ने। परकीय सत्ताओं के लाख प्रयत्नों के पश्चात् भी हमारी चिति का पूर्ण अवपात नहीं हो सका। समाज के एक न एक वर्ग में विराट जागृत रहा और स्वाधीनता का संग्राम जारी रहा। भारत ने कभी हार नहीं मानी। ऐसे आक्रमणों के परिणामस्वरूप जहाँ विश्व के अनेक प्राचीन, सशक्त राष्ट्र इतिहास के गर्त में विलीन हो गए, वहाँ भारत जीवित रहा। तो यह क्या बात है कि हमारी हस्ती नहीं मिट सकी? भारत की चेतना के पीछे कौन सा ऐसा तत्त्व था, जिसने संजीवनी का काम किया और उसे नष्ट होने से बचाया?

भारत पर हो रहे वर्तमान आक्रमणों की वास्तविक गाथा जानने के लिए दो, तीन सौ वर्ष पीछे जाना जरूरी है। यह गाथा शुरू होती है भारत में अंग्रेजों के प्रवेश से। उन्होंने देखा कि भारत एक बड़ा बाजार भी है और अगर इस पर पूरा आधिपत्य कर लिया जाऐ तो मानचेस्टर एवं लिवरपूल के कारखानों का माल यहाँ सदा बिकता रहेगा। लेकिन इंग्लैंड से हजारों मील दूर इतने बड़े देश को फौज के बल पर गुलाम बनाए रखना तो संभव नहीं था। इसलिए इसे टूटा–फूटा, बिखरा बनाए रखना ही एकमात्र उपाय था। उन्होंने देखा कि भारत एक महान संस्कृति का उत्तराधिकारी है, एक गौरवशाली अतीत का स्वामी है। यदि इसे अपनी जड़ों से काट दिया जाए और इसका इतिहास–बोध नष्ट कर दिया जाए तो फिर इसे लम्बे समय तक गुलाम बनाया जा सकता है। यह थी भारत पर वैचारिक आक्रमण की शुरूआत, जिसका उद्देश्य था भारतीय मानस को पराभूत करना, इसकी 'चिति' को मृत प्रायः बना देना। पहला काम किया गया हमारे इतिहास बोध को विकृत करना। आर्यों के 'आक्रमण' का सिद्धांत इसी दिशा का प्रथम चरण था। इस तथाकथित सिद्धांत ने जितने सामाजिक तनाव पैदा किए उनका दुष्परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं।

साथ ही यह पढ़ाना भी शुरू किया गया कि भारत का ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अपना कुछ भी मौलिक नहीं था। जो कुछ ज्ञान भारत में था, उसका मूल स्रोत यूनान में था। हमारा कालबोध भी विकृत किया गया। हमारे प्रत्येक मनीषी का काल निर्धारण किया गया यूनानी विद्वानों के बाद का। यह भी कहा गया कि भारतवासी लिखना नहीं जानते थे, अक्षर भी उन्होंने किसी आरामिक लिपि से उधार लिए थे। अक्षर ब्रह्म ॐ के उद्‌गाता भारतीय आज भी विश्वविद्यालयों में इन्हीं सबको पढ़ा रहे हैं। संस्कृत भाषा की खिल्ली उड़ाई गई, वेदों को गड़रियों का गीत बताया गया और भारत की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं को छिन्न–विच्छिन्न कर दिया गया। शिक्षा पद्धति में ऐसे परिवर्तन किए गए जिससे शिक्षित भारतीय अपनी परम्पराओं को हेय दृष्टि से देखना शुरू कर दें, उसे अपने धर्म, संस्कृति महापुरुषों पर अनास्था उत्पन्न हो जाए। उसे अपने धर्म के प्रति कोई श्रद्धा न रह जाए। मैकाले ने लिखा था, "अब बंगाल में अंग्रेजी स्कूल खुल गए हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि तीस वर्षों बाद बंगाल में कोई व्यक्ति उपासना के लिए मंदिरों में जाने वाला नहीं बचेगा।" श्री केशव चन्द्र सेन ने 1880 में इंग्लैंड में जाकर कहा था कि भारत में मूर्ति पूजा, और अंधविश्वास के कारण .... अज्ञान एवं अशिक्षा के परिणामस्वरूप जो दयनीय परिस्थिति है उसकी तुलना विश्व में अन्यत्र नहीं है और भारतीय समाज घोर पतन की अवस्था में है। यह द्रष्टव्य है कि जब उन्होंने ऐसा कहा था, तब ब्रिटिश पादरी बता रहे थे कि भारत में प्रत्येक गाँव में शाला है, जहाँ हर जाति के बच्चे पढ़ते हैं और हर जाति के अध्यापक पढ़ाते हैं। माउण्ट स्टुअर्ट एलफिंस्टन ने राजा राममोहन राय के बारे में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था, "राममोहन राय स्वयं को किसी बड़े फिरंगी के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे"। यह मानसिकता तैयार कर दी थी, चालाक अंग्रेजों ने भारत की चिति को अवसन्न करने की। इस सबके बावजूद भी मंदिरों में जाना बंद नहीं हुआ और भारतीय जन अपनी परम्पराओं लिए संघर्ष करते रहे। सन् 1894 के भारत में गोरक्षा के प्रश्न पर व्यापक आंदोलन होते रहे। रानी विक्टोरिया ने कहा था कि यह आन्दोलन मूलतः अंग्रेजी राज के विरुद्ध है, न कि मुसलमानों के। उन दिनों भी भारत की अधिकांश जनता अपने अस्तित्व की पहचान, अपनी परम्पराओं, धर्म और संस्कृति के लिए संघर्षशील रही, लेकिन एक छोटा वर्ग अंग्रेज–परस्त बनकर उनका अनुकरण कर रहा था। यही वह बीज था, जो आज विष–वृक्ष बनकर हमारी अस्मिता के लिए संकट उत्पन्न कर रहा है। सन् सत्तावन की क्रांति के पश्चात् तो अंग्रेजों के दुष्चक्र तेजी से घूमने लगे और भारतीय जन को उसकी महान संस्कृति की पीयूष धारा से विलग करना, मानसिक रूप से पराभूत करना, सामाजिक रूप से विखंडित करना, आर्थिक रूप से जर्जरित बना देना तथा भारत की हिन्दू पहचान को नष्ट करना उनकी कुटिल नीति का उद्देश्य था।

ऐसा नहीं कि हमारे समाज में इन कुचक्रों को समझने वाले नहीं थे। स्वामी दयानन्द ने सांस्कृतिक आक्रमण को पहचान कर वैदिक संस्कृति के उद्धार के अथक प्रयत्न किए।

सामाजिक कुरीतियों तथा हिन्दू समाज की दुर्बलताओं को दूर करते हुए उन्होंने स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेश और स्वराज के मंत्रों का उद्घोष किया। भारत को मानसिक दासता के भँवर से उबारने और भारतीय मनीषा के स्वाभिमान को जागृत करने का भागीरथ प्रयास किया था स्वामी विवेकानन्द ने। भारत के राष्ट्रीय पुनर्जागरण की मुख्य धारा की शक्ति, उसके ओज और सामर्थ्य के मूर्तिमंत प्रतीक बनकर विवेकानन्द ने भारतीय मनीषा को उसकी हीन ग्रंथियों से मुक्त कर दिया। यह उन्हीं का घोष है– "गर्व से कहो हम हिन्दू हैं"। यही राष्ट्र की अस्मिता है। उन्होंने यह स्थापित किया था कि हिन्दू का धर्म ही उसे स्वतंत्र एवं मुक्त रहने की प्रेरणा देता है। इस तरह उन्होंने स्वधर्म एवं स्वराज को उच्चतम आध्यात्मिक सोपान पर स्थापित कर दिया। स्वामी जी की 1893 में शिकागो की धर्मसभा में दिग्विजय की गहरी छाप लोकमान्य बालगंगाधर तिलक पर पड़ी। उन्होंने प्राच्य एवं प्रतीच्य साहित्य का मंथन किया और भारतीय वाङ्मय का भी गहन अध्ययन किया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कांग्रेस में अग्रिम पंक्ति के अनेक नेता अपनी जड़ों से कटे हुए हैं, जिसके कारण स्वाधीनता आंदोलन को लोक–समर्थन नहीं मिल पा रहा है। तिलक महाराज ने सर्वप्रथम हिन्दू प्रतीकों के आधार पर लोक मानस को स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए स्पर्श किया और तत्काल सारे देश में विद्युल्लहरी की भाँति स्वराज की पुकार गूँज उठी। उसी राष्ट्रीय नवजागरण की मुख्य धारा के अनुयायी थे डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार, जो न केवल स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े अपितु हो गए उसमें आपाद निमज्जित। स्वाधीनता के उस महान यज्ञ में उनके ऋषि थे लोकमान्य तिलक और इष्ट था "दैवी हिन्दू राष्ट्र"। लोकमान्य तिलक के तिरोधान के पश्चात् डॉ. हेडगेवार और उनके साथी तिलक महाराज के स्थान पर कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में लाना चाहते थे श्री अरविंद को, जो कुछ ही समय पूर्व आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर चुके थे। श्री अरविंद को क्यों लाना चाहते थे कुछ लोग? क्योंकि वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो वैचारिक स्तर पर नवजागरण का मर्म जानते समझते थे। यह स्पष्ट होता है, उनके उत्तरपाड़ा के भाषण से; उन्होंने कहा था–

"I said then .... that nationalism is not politics but a religion, a creed, a faith. I say it again today but I put it in another way. I say no longer that nationalism is a creed, a religion, a faith, that it is Sanatan Dharma which for us is nationalism. This Hindu nation was born with the Sanatan Dharma, with it, it moves and with it, it grows. When the Sanatan Dharma declines, then the nation declines, and if the Sanatan Dharma were capable of perishing, with the Sanatan Dharma the nation would perish. this is the message that I have to speak to you."

अर्थात् "मैंने तब कहा था ..... राष्ट्रवाद राजनीति नहीं है, वह एक धर्म है, वह एक सिद्धांत है और है एक निष्ठा। इस बात को आज मैं फिर दोहराता हूँ, पर जरा दूसरे ढंग से। मैं अब यह नहीं कहता कि राष्ट्रवाद एक धर्म है, एक सिद्धांत है और एक निष्ठा है, मैं अब कह रहा हूँ कि सनातन धर्म ही हमारा राष्ट्रवाद है। यह हिन्दू राष्ट्र सनातन धर्म के साथ उत्पन्न

हुआ था, उसी के साथ यह फलता–फूलता है और उसी के साथ यह कदम मिलाकर चलता है। जब इस सनातन धर्म का ह्रास होता है, तब यह राष्ट्र भी क्षीण हो जाता है, और यदि सनातन धर्म का लोप संभव हो तो राष्ट्र भी उसी के साथ लुप्त हो जाएगा।'' द्रष्टव्य है कि यहाँ धर्म का अर्थ उपासना पद्धति विशेष या कर्मकाण्ड नहीं है, अपितु उन सार्वभौमिक नियमों से है, जो मानव मात्र के लिए श्रेयस्कर हैं।

विवेकानंद के पश्चात् इतने असंदिग्ध शब्दों में भारत के सच्चे राष्ट्रीय स्वरूप का उद्घोष मिलता है– ऋषि अरविंद के ओजस्वी भाषणों, उपदेशों में या फिर डॉ. हेडगेवार एवं उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी श्री गुरुजी के राष्ट्रीय चेतना के प्रजागरण के गुरू–गंभीर प्रयासों में। उन्होंने राष्ट्र की अस्मिता पर हो रहे चतुर्दिक प्रहारों के प्रति समूचे देश को सावधान किया और उनसे देश को बचाने के लिए अहर्निश तप किया। वे जानते थे कि निःसर्ग ने हिन्दू समाज के लिए एक सहज, स्वाभाविक लक्ष्य निर्धारित कर रखा है– दैवी हिन्दू राष्ट्र की स्थापना। कोई यह न समझे कि श्री गुरुजी ने इस लक्ष्य को किसी प्रतिक्रिया के स्वरूप स्वीकार किया था। वे न तो संकीर्ण प्रतिक्रियावादी थे और न ही थे फिरंगी की चकाचौंध से प्रभावित। वे तो थे विवेकानन्द की धारा के पथिक और थे मानव मात्र ही नहीं प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम और करुणा से ओतप्रोत। आज जो कुछ हम हिन्दू जीवनदृष्टि या हिन्दूपन के प्रति आत्मीय गौरव की अनुभूति देख रहे हैं, वह है श्री गुरुजी जैसे मनीषियों की तपस्या का फल और डॉ. हेडगेवार जैसे सपूतों के आत्मोत्सर्ग का सुफल।

लोकमान्य तिलक के देहान्त के पश्चात् कांग्रेस का नेतृत्व सँभाला महात्मा गाँधी ने। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम का लक्ष्य रखा था– 'रामराज्य'। यह भारतीय अस्मिता का सर्वोत्तम प्रतीक था। पर इस शब्द पर जिन्ना को आपत्ति थी। कुछ मुस्लिम नेताओं को तो वंदेमातरम् गीत पर भी आपत्ति थी। वंदेमातरम् तो भारतीय अखण्डता एवं स्वाधीनता का बीजमंत्र है। यह दोनों घटनाएँ ही प्रदर्शित करती हैं कि एक विभक्त मानसिकता जन्म ले चुकी थी। एक ऐसा समूह विद्यमान् था, जो अपने को राष्ट्र चेतना की मुख्य धारा से अलग समझता था। मुस्लिम लीग ने जिस प्रवृत्ति को जन्म दिया था, अंग्रेज ने जिसे प्रश्रय दिया और कांग्रेस ने जिसे तुष्टिकरण के द्वारा मनाने और रिझाने का असफल प्रयास किया उसका परिणाम क्या हुआ यह 28 दिसम्बर 1938 की रात्रि में मुस्लिम लीग के पटना सम्मेलन में जिन्ना के निम्न भाषण से पता चलता है–

"The Congress High Command makes the preposterous claim that they alone are entitled to speak on behalf of the whole of India, that they alone are capable of delivering the goods. Other are asked to accept the gift from a mighty sovereign...... The Congress is nothing but a Hindu body....... I challenge anybody to deny that the Congress is not mainly a Hindu body. I ask, does the Congress represent the Muslim?

Who is the genius behind it? Mr. Gandhi, ... His ideal is to revive the Hindu religion and establish Hindu Raj in this Country, and he is utilizing the Congress to further this object. .... Today the Hindu mentality, the Hindu outlook, is being carefully nurtured, and Muslims are being forced to accept these new conditions and to submit to the orders of the Congress leaders."

स्पष्ट रूप से यह भाषण इस तथ्य को

उजागर करता है कि उस समय मुस्लिम समाज में अलगाव की प्रवृत्ति किस कदर बढ़ चुकी थी। स्पष्ट ही यह देश में चिति और विराट के क्षरण के लक्षण थे। चाहिए तो था कि समय रहते इस क्षरण को रोका जाता, पर देश का दुर्भाग्य राजनेताओं में स्वयं ही दौर्बल्य आ गया था क्योंकि वे स्वयं राष्ट्र चेतना की मूलधारा के प्रवाह से कट रहे थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अध्येता उस समूचे घटनाचक्र से परिचित हैं, जो 1938 से 1946–47 के बीच घटित हुआ। 1938 की मुस्लिम लीग की अलगाववादी उन्माद को न रोकने का परिणाम 29 जुलाई 1946 के मुस्लिम लीग के प्रस्तावों के रूप में देखने को मिला। लीग ने दो प्रस्ताव पारित किए, एक में कैबिनेट मिशन के मई मास के प्रस्तावों को लीग द्वारा दी गई स्वीकृति वापिस ली गई और दूसरे में सीधी कार्यवाही का आह्वान किया गया–

"Whereas Muslim India has exhausted, without success, all efforts to find a peaceful solution of the Indian problem by compromise and constitutional means; and where as the Congress is bent upon setting Caste-Hindu Raj in India with the connivance of the British; ..... and where as it has become abundantly clear that the Muslims of India would not rest contented with anything less than the immediate establishment of an independent and fully sovereign State of Pakistan ..... the time to assert their just rights, to vindicate their honour and to get rid of the present British slavery and the contemplated future Caste-Hindu domination."

सब जानते हैं कि इसकी परिणति भारत के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन में हुई। यदि राष्ट्र की चिति और विराट जाग्रत रहे होते, तो यह दुर्दिन न देखना पड़ता। यह भी द्रष्टव्य है कि एक राष्ट्र में दो चेतनाएँ प्रवाहित होंगी तो राष्ट्र का अखंड रहना असंभव है। एक शरीर में दो आत्माएँ कैसे रह सकती हैं? शिमला सम्मेलन के पश्चात् पत्रकार दुर्गादास ने गाँधी जी से सममेलनें बारे में उनकी प्रतिक्रिया पूछी थी। गाँधी जी का उत्तर दुर्गादास की प्रसिद्ध पुस्तक "भारत कर्जन से नेहरू तक एवं उसके बाद" में छपा है, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भारत के राजनेताओं की इच्छाशक्ति कितनी कमजोर हो गई थी। चिति और विराट के इस क्षरण का ही परिणाम विभाजन था– इसमें कोई संदेह नहीं। दुर्गादास ने लिखा है–

It was unfortunate he added, that most of his colleagues had come out of jail tired and dispirited and without a heart to carryout the struggle. They wanted a settlement with Britain and hungered for power. "I fear," he added, "they may throw to the winds the basic principles for which the Congress stood. The Hindus are indivisible. India is indivisible. There can be no swaraj without Hindu-Muslim unity. Jinnah objects to the expression of Ram Raj by the which I mean not Hindu Raj but Devine raj, Insaf Raj where justice will prevail between man and man. If God gives me strength, I will fight for these principles with my life.

उन्होंने कहा कि यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि उनके अधिकांश साथी जेल से थके हुए, उत्साहहीन और संघर्ष जारी रखने के जोश से रहित होकर बाहर आए थे। आगे उन्होंने (गाँधी जी ने) कहा, "मुझे डर है कि वे उन आधारभूत सिद्धांतों को छोड़ देंगे, जिनके लिए कांग्रेस का अस्तित्व है। हिन्दू अविभाज्य है। भारत अविभाज्य है। हिन्दू–मुस्लिम एकता के बिना स्वराज्य नहीं हो सकता। जिन्ना को राम–राज्य शब्द पर आपत्ति है, जिससे मेरा तात्पर्य हिन्दू–राज्य

नहीं, बल्कि दैवी–राज्य, इंसाफ के राज्य से है, जहाँ मनुष्य और मनुष्य के बीच न्याय हो। यदि ईश्वर मुझे शक्ति दे तो मैं इन सिद्धांतों के लिए जीवन देकर भी लड़ूँगा।''

पर क्या विभाजन के पश्चात् भी शेष भारत संकटमुक्त हो पाया। भारत की अस्मितां पर आज भी अनेक आक्रमण हो रहे हैं। उत्तर पूर्वांचल की स्थिति देखकर तो यह लगता है कि 1947 के पूर्व के लक्षण गहरा रहे हैं। विघटन और पार्थक्य के बीज अब पुनः आकार ले रहे हैं। बाँग्लादेश की घुसपैठ ने जो जनसंख्या का असंतुलन उत्पन्न कर दिया है और असम की राजनीति में जो बदलाव आ रहा है, वह शुभ नहीं है। सातों बहनों (पूर्वोत्तर) में उग्रवादी एवं अलगाववादी तत्त्व कहीं कम कहीं ज्यादा राष्ट्र चेतना की विरोधी भूमिका अपना रहे हैं। देश के राजनेता सत्ताप्राप्ति के तात्कालिक लक्ष्य को ध्यान में रखकर इन तत्त्वों से समझौते कर रहे हैं। वे इतिहास से शिक्षा नहीं लेना चाहते और स्वाधीनता संग्राम के निष्कर्षों से भी सीखना नहीं चाहते। वे चिति और विराट के प्रजागरण के महत्त्वपूर्ण कार्य का दुर्लक्ष कर रहे हैं। कश्मीर का संकट बना ही हुआ है। पश्चिमी सीमाओं पर भी निरंतर अनुप्रवेश हो रहा है। पड़ौसी देशों के गुप्तचर आतंकवाद का नग्न नृत्य निरंतर कर रहे हैं। देश के लगभग पौने दो सौ जिलों में विभिन्न प्रकार की उग्रवादी शक्तियाँ जनजीवन को त्रस्त कर रही हैं। पश्चिम से आ रहा उपभोक्तावाद जिस अपसंस्कृति का प्रचार कर रहा है वह राष्ट्र के शाश्वत जीवन मूल्यों पर आघात कर रहा है। हमारा इतिहासबोध विकृत बना हुआ है। अर्थव्यवस्था में भारी असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। कई मामलों में अंतर्राष्ट्रीय दबाव को सहना कठिन होता जा रहा है। देश की अस्मिता, अखंडता एवं सुव्यवस्था के लिए काफी संकट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। मैं कोई भयावह चित्र खींचकर राष्ट्र को भयभीत नहीं करना चाहता। अपितु मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि हमें चिति और विराट के प्रजागरण की आज पहले से भी अधिक आवश्यकता है। इस ओर प्रयत्न में कमी रहने से इन संकटों का समाधान नहीं हो सकेगा।

विश्व के जिन देशों के सामने अस्मिता के संकट हैं, उसमें अमेरिका में हो रहे विमर्श को ध्यान से देखना होगा। जीवनमूल्यों पर राष्ट्रजीवन की राजनीति, अर्थनीति, अमेरिका के अल्पसंख्यक समाज आदि पर क्या प्रभाव पड़ता है– इस पर गंभीर चिंतन मनन वहाँ हो रहा है। वहाँ अब यह पूछा जा रहा है कि राष्ट्रीयता को किस प्रकार परिभाषित किया जाए? नागरिकता और राष्ट्रीयता का अंतर अब वहाँ बहस का विषय है। अमेरिकन पहचान उसकी एक केन्द्रीय संस्कृति बताई जा रही है, जो श्वेत, एंग्लो सैक्सन एवं प्रोटैस्टैंट के रूप में परिभाषित की जाती है। वहाँ दक्षिण की ओर मैक्सिको एवं अन्य लैटिन अमेरिकन लोगों के आगमन से पृथक भाषा–भाषी, अधिकांश कैथोलिक एवं गैर एंग्लो सैक्सन समूह कई स्थानों पर बहुमत में हो गया है। ये स्थान मैक्सिको एवं लैटिन अमेरिका से सटे हैं और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा इन देशों की सीमा पर हैं। अमेरिका के कुछ प्रमुख विचारक इसे भविष्य के लिए चुनौती मानते हैं। यह भी संभावना व्यक्त की

जा रही है कि अलगाव की भावना बढ़ सकती है और अमेरिका के दक्षिणी भाग में एक नया देश उभर सकता है। इन सब कारणों से अमेरिका के ये विचारक अमेरिका की स्पष्ट पहचान के तत्त्वों की व्याख्या कर रहे हैं।

कहा जा रहा है कि विश्वनागरिकता जैसी अवधारणाएँ अमेरिकी समाज और अन्य समाजों के अंतर को धूमिल कर देती हैं। राष्ट्रवादी सोच से अमेरिकी विशिष्टता उजागर होती है। अमेरिका अलग है और उसकी पहचान मूलतः उसकी प्रौस्टैंट संस्कृति और धार्मिकता में है। विश्वनागरिकता का विकल्प राष्ट्रवाद है, जो उन तत्त्वों को और उन प्रवृत्तियों को संरक्षित एवं संवर्धित करता है जो अमेरिका की स्थापना के समय से इसकी पहचान है।

हंटिंग्टन के अनुसार यह भी अध्ययन किया गया है कि जो देश धर्म पर या ईश्वर पर अधिक विश्वास करते हैं, उनमें राष्ट्रीय स्वाभिमान अधिक होता है। किसी देश में जो लोग ईश्वर को अधिक महत्त्व देते हैं, वे अपने देश पर अधिक गर्व करते हैं। एक अध्ययन से पता चला है कि ऐसे चार देश हैं, जहाँ ईश्वर पर विश्वासी सर्वाधिक हैं। उनमें अमेरिका, आयरलैंड और पोलैंड तो ईसाई हैं और चौथा है भारत। हंटिंग्टन यह भी कहते हैं कि अमेरिकन ईश्वर और अपने देश दोनों के प्रति प्रतिबद्ध हैं, अमेरिका के लिए यह दोनों अविभाज्य है। एक ऐसे विश्व में, जहाँ धर्म देशों में मैत्री, गठबंधन, सहयोग तथा विरोध का आधार बन रहा हो यह हो सकता है कि अमेरिकन अपनी राष्ट्रीय पहचान एवं अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए धर्म की तरफ लौट आएँ।

आज जब विश्व के शक्तिसम्पन्न राष्ट्र भी अपनी पहचान के मूल तत्त्वों की खोज के लिए प्रयत्नशील हैं, तब हमें इस ओर गाफिल नहीं रहना चाहिए।

हमें अपने संकटों का समय रहते समाधान ढूँढ लेना चाहिए। हमारी अस्मिता की आधारशिला उस दिन रख दी गई थी, जब हमें संसार ने 'हिन्दू' नाम दिया था। एक भू–सांस्कृतिक अवधारणा के रूप में इस शब्द से हमें पुकारा गया था। पश्चिम के हमारे पड़ौसियों ने सिंधु नदी के इस पार निवास करनेवाले इस अतिविकसित एवं उन्नत समाज को हिन्दू नाम दिया तब से हम इसी नाम से जाने जाते हैं। भारतवर्ष नाम के कारण हमें भारतीय भी कहा जाता है और बाद में यूरोपीय भाषाओं में हमें इंडियन कहा जाने लगा। इस तरह हमारे नाम के बारे में काई विवाद नहीं है। हमारा नाम उपासना पद्धति को परिभाषित नहीं करंता, वरन् हमारी जीवनदृष्टि की व्याख्या करता है। हमारी संस्कृति उसी जीवनदृष्टि का प्रतिफल है। अतः हिन्दू राष्ट्र अध्यात्म पर आधारित है और सदियों से पंथनिरपेक्ष राज्य व्यवस्था का समर्थक है।

राष्ट्र की अस्मिता पर आए संकटों के निवारण के लिए चिति और विराट के जिस जागरण की आवश्यकता है वह बहुत उत्सर्ग माँगता है। इस संबंध में मैं विवेकानन्द का एक उद्धरण लिखना चाहूँगा, जो उन्होंने भारत की जागृति के विषय में कहा था–

"India will be raised, not with the power of flesh, but with power of the spirit, not with the flag

of destruction but with flag of peace and love .... Call up the divinity within you, which will enable you to bear hunger and thirst, heat and cold.

Lay down your comforts, your pleasures, your name, fame or position, may be even your lives, ... Ours is to work ...... One vision I see clear as life before me, that the ancient Mother has awakened once more, sitting on her throne rejuvenated, more glorious than ever. Proclaim her to all the world with the voice of peace and benediction."

विवेकानन्द का आह्वान है– अपने अन्दर के देवत्व को जगाओ, जो तुम्हें सब प्रकार की बुभुक्षा और तृषा को सहन करने की शक्ति देगा। अपने आराम छोड़ दो, अपने जीवन की शक्ति का भी बलिदान कर दो, अपने तमाम दुनिया के आनन्द छोड़ दो। हमें सिर्फ काम करना है। मैं एक दृश्य स्पष्ट देख रहा हूँ कि यह जगन्माता फिर से जाग उठी है, और है पहले से कहीं अधिक प्रतिभासम्पन्न।

तो परमपूजनीय श्री गुरुजी की जन्मशताब्दी के इस वर्ष में राष्ट्र के सच्चे स्वरूप को समझकर हम भारत के लोग राष्ट्र की चिति एवं विराट के जागरण का वज्र संकल्प लेकर देश पर गहराते हुए संकटों का निवारण करने के लिए तत्पर रहें। देशवासियों को यह विश्वास दिलाएँ कि श्री गुरुजी के कोट्यावधि अनुयायी स्वामी विवेकानन्द द्वारा जिस उत्सर्ग का आह्वान किया गया था, उस उत्सर्ग के लिए कटिबद्ध हैं। हम नियति के निमंत्रण को स्वीकार करते हैं और यह सिद्ध कर देंगे कि इक्कीसवीं शताब्दी भारत की शताब्दी होगी।

—लेखक पूर्व केन्द्रीय मंत्री, भारत सरकार

निर्धारित कार्यक्रम में पहुँचने के लिए डाले संकट में प्राण

अगस्त 1947 के पहले सप्ताह में सिंध का प्रवास करके जब श्री गुरुजी ने पंजाब में प्रवेश किया, उस समय पूरा पंजाब भय और आतंक से घिरा हुआ था। फिर भी जगह-जगह पर आपात-ग्रस्त हिन्दू बन्धुओं से मिलकर उनका मनोबल बढ़ाने की उत्कण्ठा से श्री गुरुजी स्वयं के प्राण संकट में डाल कर भी विभिन्न स्थानों पर पहुँचते रहे। प्रवास में कई बार वर्षा से ध्वस्त हुए रास्तों या रेल की मालगाड़ियों के डिब्बों में या कभी इंजन में बैठकर वे आगे बढ़ते थे। रास्ते में चहेड़ू नामक पुल था, वहाँ पहुँचने पर ऐसा दिखाई दिया कि आगे का प्रवास असंभव है। पुल पर रेल की पटरी नीचे झूल रही थी और पुल के नीचे बाढ़ का पानी प्रचण्ड वेग से उछलते हुए बह रहा था; शेष कार्यकर्ताओं को वहाँ से आगे चलने का अन्य कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। परन्तु वहाँ पहुँचते ही श्री गुरुजी ने उस झूलते पुल की पटरी पर पैर रखकर सर-सर कदम बढ़ाते हुए देखते-देखते तेजी से पुल पार कर लिया। अन्य कार्यकर्ताओं ने भी हिम्मत बटोरकर उसी प्रकार पुल पार किया; लुधियाना (निर्धारित स्थान) पहुँचने पर लोग आश्चर्य से स्तंभित रह गए।

संघकार्य का आध्यात्मिक आधिष्ठान

श्री चं. प. मिशीकर

यह बात सर्वमान्य है कि जिनकी जन्मशताब्दी हम मनाने जा रहे हैं उनका अर्थात प.पू. गुरुजी का व्यक्तित्व आध्यात्मिक था। इस बात में भी शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि आपने आध्यात्मिकता के उच्चतम छोर को छुआ था। सारगाछी के आश्रम में आपने कठोर साधना की थी और स्वामी अंखडानंद जी से विधिवत् दीक्षा प्रसाद प्राप्त करने का सौभाग्य भी आपको मिला था। आप मानो वैराग्य की सगुण साकार मूर्ति ही थे।

इन गुणों से मडिंत श्री गुरुजी पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दायित्व मात्र 34 वर्ष की आयु में ही आ पड़ा था। यह कठिन जिम्मेदारी गुरुजी ने लगातार 33 वर्षों तक अत्यन्त सक्षमता से निभाई। और आद्य सरसंघचालक पू. डा. हेडगेवार जी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य का जो बीज बोया था और पंद्रह वर्षों तक जिसका तन मन धन से संवर्धन किया था उसे प. पू. गुरुजी ने वट वृक्ष के समान विशाल तथा देशव्यापी स्वरूप देकर खूब फूला–फलाया था। समस्त हिन्दु समाज को सुसंगठित करना और उसे समर्थ स्वरूप में दुनिया के सामने खड़ा करना ही संघ का कार्य है। साथ ही, विश्व के गुरू स्थान पर अपनी भारतमाता को फिर से सुप्रतिष्ठित करना और हिंदू राष्ट्र का सपना साकार करना भी संघ का अहम् कार्य है।

इस कार्य की सफल पूर्ति करने के लिए कौन सा तात्त्विक अधिष्ठान संघ ने अपनाया था? इस प्रश्न का निर्णायक उत्तर डॉक्टर जी के जीवन काल में ही स्वीकार की गई संघ की प्रार्थना ने ही दिया है। 'प्रभो शक्तिमन्' को लक्ष्य करके इस प्रार्थना में अपेक्षा व्यक्त की है। कहा है कि यह कार्य 'तुम्हारा ही' अर्थात् ईश्वरी कार्य है। प्रार्थना में 'अभ्युदय तथा निः श्रेयस' की आवश्यकता प्रतिपादित की है। इसके लिए हिन्दू राष्ट्र के घटको में से 'वीरव्रत' प्रेरित हो इस प्रकार से प्रार्थना की है। अंत में अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह याचना की है कि सत् गुणों से युक्त इस हिन्दू राष्ट्र को परमवैभव पर प्रतिष्ठित करने के लिए परमेश्वरी शुभाशीर्वाद प्राप्त हो। जरा सा विचार करने पर यह स्पष्ट होगा कि संघ ने अध्यात्म का तात्त्विक अधिष्ठान ही स्वीकार किया है। और उसके दर्शन राष्ट्र जीवन में दिखाई दे– इस प्रकार का देशव्यापी प्रयास प्रारंभ से ही किया है।

श्री गुरुजी संघ कार्य से अटल–अभिन्न, एकरूप हो सके इसका यह भी कारण है कि

हिंदुओं की अवनति, दुःख-दैन्य की वजह हिंदू जीवन विचार ही हैं- यह आक्षेप, आपत्ति, कटाक्ष श्रीगुरुजी ने सरेआम दुतकारा है और कहा है कि हिंदू समाज में आज दिखाई देने वाले दैन्य और दरिद्रता का कारण वास्तव में हिंदू जीवन सिद्धान्तों का विस्मरण ही है।

संघ का ध्येयवाद उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व से बिल्कुल सुसंगत है। रामकृष्ण, विवेकानंद जी की भावधारा में मानवी जीवन की सार्थकता का जो विचार श्री गुरुजी ने ग्रहण किया है उसकी परिपूर्ति संघकार्य के माध्यम से हो रही है, यह उन्हें अनुभव हुआ। वास्तव में उस जमाने में और भी अन्य विचारधाराओं की जय–जयकार दुनियाभर में हो रही थी। और अनेक तथाकथित बुद्धिमान भारतीय नेता लोग उनकी ही धुन छेड़ रहे थे।

इन विचारवंतों में से कोई समाजवाद के, कोई साम्यवाद के तो कोई पाश्चात्य पूँजीवाद के समर्थक थे। किंतु हर मर्यादा लाँघने वाली व्याधि स्वातंत्र्यवादी तथा भोगवादी पाश्चात्य विचार प्रणाली या शासन को ही सर्वश्रेष्ठता प्रदान करने वाली समाजवादी या साम्यवादी विचार प्रणाली श्री गुरुजी को आकर्षित करे– यह असंभव था। क्योंकि ये विचारधाराएँ 'जड़वादी' होने के कारण उनमें होने वाला 'चैतन्य' का अभाव मानवी कल्याण के लिए कदापि पोषक नहीं हो सकता– यह उनका संदेह रहित विश्वास था। भारत दूसरों के आचार–विचारों का अंधानुकरण न करे और मानव मात्र के सुख–स्वास्थ्य का ही समग्र विचार करने वाले आध्यात्मिक ज्ञान को दुनियाभर में वितरित–प्रसारित करने का नियम कर्तव्य निभाने के लिए आवश्यक प्रभाव संपादन करे– इसी प्रबल प्रेरणा से श्री गुरुजी स्वंय भी कार्यरत रहे और समाज में कर्मचेतना जागृत करने के लिए उन्होंने समाज प्रबोधन का कार्य भी किया।

स्वयं को अधुनातम और प्रगतिशील कहलवाने लोग स्वातंत्रता, समता, बंधुता की भाषा रटते दिखाई देते हैं। एकाधिकार, अधिनायकता, तानाशाही का सर्मथन करने वाले साम्यवादी भी राष्ट्र–विलय (विदरिंग अवे ऑफ द स्टेट) तथा संतृप्त समाज जीवन के सपने नचाते हैं। किंतु आध्यात्मिक अधिष्ठान के बिना मानव–मानव में सुखपूर्ण संबंध निर्माण होना कतई संभव नहीं है– इस प्रकार का अनुरोधपूर्ण प्रतिपादन श्री गुरुजी ने हमेशा किया है। क्या है इनके इस प्रतिपादन का स्वरूप? संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक समान आत्मतत्व या चैतन्य सभी प्राणीमात्र में तथा सारी सृष्टि में समान रूप से व्याप्त है। यही व्यक्ति–व्यक्ति में भले–बुरे संबधों का तथा उसके समग्र जीवन का एकमात्र आधार है ऐसा प्रतिपादन वे दृढ़ता के साथ किया करते थे।

1972 ई. में ठाणे में आयोजित अखिल भारतीय संघ कार्यकर्ताओं के अभ्यास वर्ग में श्रीगुरुजी ने समाज जीवन के सभी अंग–उपांगों की कालसंगत रचना इन्हीं तत्त्वों के आधार पर करने के लिए संबंधित क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं को सुझाया था। उन्होंने कहा, "आधुनिक कहलवाने वाले जो विचार आजकल बताए जाते हैं, उनके संबंध में विचार करने पर लगता है कि सभी लोग समाज के नाम ही बोलते हैं किंतु समाज परमात्मा का ही एक रूप है यह भावना अगर न हो तो आपका और समाज का संबंध ही क्या रहा? समाज के सुख–दुःखों की अनुभूति आपमें क्यों और कैसे होगी? वह अनुभूति आपको करा देने वाला तल कौन सा है? आधुनिक कहे जाने वाले विचारों में और दर्शन में इस प्रकार की संवेदना जोड़ने वाला कोई तत्त्व दिखाई नहीं देता। उन विचारों के अनुसार हरेक की निर्मित

स्वतंत्र रूप से हुई है और समाज के एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति से कोई नाता संबंध नहीं है। अतः एक दूसरे की चिंता; दूसरों का भला हो– यह भावना; सबको भरपेट खाना मिले– यह सदिच्छा; इनमें से किसी भी बात की आवश्कता नहीं होगी। अतः समाज में प्रसृत हुई ये आधुनिक विचार–प्रणालियाँ भले ही समाज के नाम पर विचार करने का ढोंग रचें लेकिन वास्तव में उनकी दृष्टि में मात्र अपने सवार्थ को साधने के लिए, अपना उल्लू सीधा करने के लिए इकट्ठा हुई आदमियों की भीड़ ही समाज है। इसमें एक–दूसरे के साथ जो संबंध होता है वह समान कार्य सिद्ध करने के लिए एकत्रित आना मात्र ही होता है। समाज के एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से आंतरिक रूप से, हार्दिक भाव से जोड़ने वाला अन्य कोई सूत्र इन विचारों में दिखाई नहीं देता।"

(श्री गुरुजी – अंतिम संदेश पृ. 20–29)

आचार–विचार में यह सूत्र ना होने के कारण ही समाज में जानलेवा ईर्ष्या, स्पर्धा, हिंसा, संघर्ष, अत्यधिक व्यक्तिसुखवाद, धनलोभ आदि के कारण मानवता दिनों–दिन बढ़ते भ्रम में ग्रस्त–त्रस्त हो रही है। निःस्वार्थता, प्रेम, सेवा, त्याग, परस्परपूरकता, अपरिग्रह आदि सद्गुणों से मनुष्य विमुख हो रहा है। हिंदू विचार ही एकात्मसमाज खड़ा कर सकता है और समान चैतन्य की अनुभूति के कारण ही संपूर्ण मानवजाति के सुखी तथा समृद्ध जीवन के लिए प्रयास करने की हमें प्रेरणा मिलेगी, ऐसे विचार श्रीगुरुजी निश्चयपूर्वक प्रस्तुत करते हैं। और "मैं मानता हूँ कि इसी प्रेरणा से हम कार्य कर रहे हैं।" इस प्रकार हिंदुत्व जागृति के संघ के कार्य के संबंध में उन्होंने सुस्पष्टता से कहा है। उन्होंने स्पष्टतापूर्वक और पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा कि हमारे ये विचार सभी प्रकार की परिस्थितियों में खरे उतरेंगे।

भारत दूसरों के आचार-विचारों का अंधानुकरण न करे और मानव मात्र के सुख-स्वास्थ्य का ही समग्र विचार करने वाले आध्यात्मिक ज्ञान को दुनियाभर में वितरित- प्रसारित करने का नियम कर्तव्य निभाने के लिए आवश्यक प्रभाव संपादन करे- इसी प्रबल प्रेरणा से श्री गुरुजी स्वंय भी कार्यरत रहे और समाज में कर्मचेतना जागृत करने के लिए उन्होंने समाज प्रबोधन का कार्य भी किया।

हिंदुओं की अवनति, दुःख–दैन्य की वजह हिंदू जीवन विचार ही हैं– यह आक्षेप, आपत्ति, कटाक्ष श्रीगुरुजी ने सरेआम दुतकारा है और कहा है कि हिंदू समाज में आज दिखाई देने वाले दैन्य और दरिद्रता का कारण वास्तव में हिंदू जीवन सिद्धान्तों का विस्मरण ही है। श्री गुरुजी आध्यात्मिक विकसित व्यक्ति अर्थात् मानवी सुख–शांति के लिए तिलमिलाने वाले, छटपटाने वाले थे। श्री गुरुजी यह भी अच्छी तरह से जानते थे कि दुर्बलों के सुविचार भी उपेक्षित रहते हैं। इसीलिए सर्वप्रथम हिंदू समाज तथा हिंदू राष्ट्र समर्थ, बलशाली, सक्षम बनाने का अर्थात् संघकार्य का व्रत, लगन, ध्यान उन्होंने ले रखा था– यही संक्षेप में कहा जा सकता है।

–लेखक कई मराठी पुस्तकों के रचयिता

भविष्यद्रष्टा श्रीगुरुजी


अशोक सिंघल

'तन्द्रा' बनाम 'साधना'

बात 1951 की है, पूज्य श्रीगुरु जी का आगमन प्रयाग हुआ और मेरे घर पर ही ठहरे थे। उनका कार्यक्रम एंग्लो बंगाली कालेज में हुआ। हमारे प्रान्त संघचालक माननीय बैरिस्टर साहब भी कार्यक्रम हेतु आए थे। मैं उस समय काशी में संघ के प्रचारक के नाते कार्य कर रहा था। श्री गुरुजी को एंग्लो बंगाली कालेज तक ले जाने और वापस लाने का कार्य मुझे दिया गया था। जब लौटकर आए तो. बैरिस्टर साहब ने कहा अशोक जी आप आज बहुत धीरे-धीरे कार चला कर ले गए। श्रीगुरु जी ने कहा पहुँचाया तो बिल्कुल ठीक समय पर। और फिर बोले मैं चलाकर ले गया होता तो निश्चय ही एक्सीडेंट हो गया होता और फिर उन्होंने अपने जीवन की एक घटना बताई।

जब वे काशी में पढ़ते थे तब उनका काशी विश्वनाथ के मन्दिर के दर्शनार्थ अक्सर जाना होता था। वे कहने लगे कि साईकिल पर चलते-चलते उनको दीखना बन्द हो जाता था। एक बार ऐसा हुआ कि एक ताँगे के घोड़े के बीच उनकी साईकिल और चारों ओर भीड़ हो गई, लोग बोले इसको दिखाई नहीं देता, क्यों ? और कुछ अपशब्द भी बोलने लगे। सत्य बात तो यह थी मुझे अचानक दिखाई देना ही बन्द हो गया और यह घटना हुई। लोगों ने मुझे निकाला। फिर बोले कम से कम अशोक ने कोई एक्सीडेंट तो नहीं किया। बैरिस्टर साहब बोले मैं भी जब कार से लम्बे रास्ते पर जाता हूँ तो दीखना बन्द होने लगता है। श्रीगुरु जी ने कहा वह "तन्द्रा" है, मैं जो कह रहा हूँ वह "तन्द्रा" नहीं है।

मैं सोचने लगा आँख खुली हो और दीखना बन्द हो जाए– यह तो समाधि की अवस्था है। प्रज्ञा स्थिर होने पर ही दीखना बन्द हो सकता है। मेरे लिए यह एक नई बात थी। श्रीगुरुजी एक आध्यात्मिक पुरुष हैं, यह तो प्रत्येक स्वयंसेवक जानता था किन्तु उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि छात्रावस्था से ही स्पष्ट दिखाई देती थी। निश्चित ही पूर्व संस्कारों के साथ वे उसे लेकर आए थे। उसके लिए उन्हें कोई विशेष साधना शायद करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यह अपने जीवन का एक दृष्टान्त उन्होंने मुझे अपने 'जीवन लक्ष्य की दिशा निर्देश' हेतु दिया था और यह पत्थर की लकीर की तरह मेरे भीतर तक अंकित हो गई।

हृदय में स्थित चैतन्यरूपी 'भारत माँ'

भारत माँ श्रीगुरुजी के लिए चैतन्यमयी माँ के रूप में नित्य हृदय में स्थित थी। उस पर हो रही और होने वाली आपदा उनसे छिपी नहीं रह सकती थी। उसकी प्रत्यक्ष उन्हें अनुभूति होती थी। जिस समय देश में "हिन्दी-चीनी भाई-भाई" के नारे लग रहे थे, उन्होंने चकित करने वाले रहस्य का उद्घाटन किया कि चीन ने अक्साईचिन और नेफा, जिसे आज अरुणाचल कहते हैं उसकी हजारों वर्ग मील पर कब्जा

और नियंत्रण ले लिया है। पहली बार भारत को यह समाचार पूज्य श्रीगुरुजी से ही मिला। हम जिसे अपना भाई कह कर भारतवासियों को गुमराह कर रहे हैं वह भारत का शत्रु है, आक्रमणकारी है। उसके पश्चात् ही सरकार की आँखें खुली और संसद में श्री नेहरू जी जबाव नहीं दे सके, यह स्थिति हुई।

मूक वार्ता

एक बार पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में श्रीगुरुजी ने अचानक कहा कि श्री गुलवणि जी महाराज के यहाँ आज अपना निमन्त्रण है। श्री आबाजी थत्ते इस सोच में पड़े थे कि इस निमन्त्रण की उनको तो सूचना नहीं थी, कब आया? किन्तु कुछ अधिकारियों के साथ वे श्री गुलवणि जी महाराज के यहाँ पहुँचे। प्रसाद परोसा जा रहा था और उसी समय गुलवणि महाराज ने कहा आप सब लोगों को यह रहस्य नहीं मालूम है कि यह निमन्त्रण श्रीगुरुजी को कब दिया गया? श्री गुलवणि जी एक सिद्ध पुरुष थे। वे जब बताने लगे, तब श्रीगुरुजी ने उनको संकेत किया कि वे न बताएँ किन्तु उन्होंने सबके सामने एक बड़ा रहस्य खोल दिया। उन्होंने कहा गुरुजी कहीं भी हों हमारी उनकी मूकवार्ता हो जाती है और उसी में ही यह निमन्त्रण श्रीगुरुजी ने स्वीकार किया था। सबके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

श्री मुखर्जी तथा शास्त्री जी को संदेश

आज हम नारा लगाते हैं "जहाँ हुए बलिदान मुखर्जी, वह कश्मीर हमारा है"। शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर के लिए "अलग प्रधान, अलग विधान, अलग निशान" का नारा देकर भारत से अलग करने का अभियान छेड़ दिया तो उसके विरुद्ध भारतीय जनसंघ ने भारत की प्रभुसत्ता और अखण्डता की रक्षा के लिए आन्दोलन छेड़ दिया और जनसंघ के संस्थापक व अध्यक्ष डॉ. श्यामा प्रसाद जी मुखर्जी को कश्मीर में सत्याग्रह हेतु भेजा। उनके जाने के पूर्व ही श्री गुरुजी ने एक पत्र श्यामा बाबू को लिखा कि आप कश्मीर न जाएँ, यदि आप गए तो आप लौट नहीं सकेंगे। किन्तु वह पत्र श्यामा बाबू तक पहुँच नहीं सका। श्रीगुरुजी ने जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य निकली और श्री श्यामाप्रसाद जी का बलिदान रोका नहीं जा सका।

अनुपम पत्राचार

श्री गुरुजी देश के विभिन्न श्रेष्ठ सज्जन वृन्द, संस्थाओं, संघ के हितैषी बन्धुओं, अपने देश-विदेश के स्वयंसेवकों से बहुत ही व्यापक दायरे में लगातार पत्र व्यवहार भी करते रहे। स्वयं के हाथ से और कुछ मात्रा में अपने निजी सहायक डा. आबाजी थत्ते के हाथ से यह पत्राचार होता रहा। उनके पत्रों के विषयों का भी विविध प्रकार का होना स्वाभाविक है। शायद महात्मा गाँधी को छोड़कर अपने जीवन काल में इतने बृहत् प्रमाण में और इतने प्रकार का पत्र व्यवहार करनेवाले दूसरे महापुरुष नहीं हैं। वैसे ही वर्ष में दो बार देश के सभी भागों में वर्षों तक अखण्ड प्रवास करने वाले कोई अन्य महापुरुष भी अपने देश में नहीं हुए हैं।

सन् 1964 में पाकिस्तान के साथ युद्ध में पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी। रूस ने दोनों देशों के प्रमुखों को बुलाकर सन्धि कराने का कार्य हाथ में लिया। भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री सन्धि हेतु जाने को तैयार हुए। उसी समय पूज्य श्रीगुरुजी का एक सार्वजनिक कार्यक्रम कानपुर में था, उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट कहा कि श्री लाल बहादुर शास्त्री जी को रूस नहीं जाना चाहिए। यदि वे जाते हैं तो वापस नहीं लौट सकेंगे। उनकी भविष्यवाणी सत्य हुई, उनका मृत शरीर ही लौटा।

श्रेष्ठ संतवृंद में स्थान

विश्व हिन्दू परिषद् के प्रथम अधिवेशन में श्री गुरुजी पूरे समय उपस्थित रहे। उसमें सामाजिक अस्पृश्यता जैसी रूढ़ियों को कालबाह्य कहकर उससे समाज को मुक्त करने की बात पर पूज्य श्री निरंजन देव जी तीर्थ क्रुद्ध हो गए और धर्मशास्त्र एवं मान्यताओं में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। इस पर गर्मागरम बहस छिड़ गई, लगा यह कि अधिवेशन असफल हो जाएगा। श्री गुरुजी ने रात्रि में पूज्य निरंजनदेव जी से व्यक्तिगत चर्चा की। परिणामस्वरूप पू. निरंजनदेव जी प्रसन्न होकर आए और गोरक्षा के लिए 7 नवम्बर 1966 को एक बड़ा प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने स्वयं को और पूरे श्रोताओं को शामिल होने का संकल्प कराया। यह सब पूज्य श्री गुरुजी की कृपा से ही हुआ।

भगवद् दर्शन

पूज्य निरंजनदेव जी तीर्थ के पूर्व गोवर्धन पीठ के शंकराचार्य पूज्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी एक बार नागपुर प्रवचनों के लिए आए थे, श्री गुंरुजी उन्हें सुनने के लिए नित्य जाते थे। उन्हें लगा श्री गुरुजी एक अच्छे श्रोता हैं अतः उनसे भेंट करने की इच्छा हुई। श्री गुरुजी ने उन्हें कार्यालय आने को कहा। श्री गुरुजी से अध्यात्म विषयक चर्चा होते–होते उन्हें लगा कि श्री गुरुजी की साधना उनसे बहुत आगे है। वे विस्मित होकर यह पूछ ही बैठे गुरुजी क्या आपने भगवान के दर्शन किए हैं? श्री गुरुजी कुछ बोले नहीं। उनके आग्रह पर श्री गुरुजी ने कहा आप वचन दें कि इसे किसी से आप कभी नहीं कहेंगे, तो मैं कुछ कह सकता हूँ। वचन मिलने पर श्री गुरुजी ने कहा कि संघ पर प्रतिबन्ध के समय जब मैं बैतूल कारागार में बन्द था, वहाँ मैंने करुण स्वर में भगवान् से प्रार्थना की थी कि परमपूज्य श्री डाक्टर साहब ने संघ का भार मुझे सौंपा है परन्तु आज इसके असंख्य स्वयंसेवक कार्यकर्ता देश की विभिन्न जेलों में बन्द हैं, संघ शाखाएँ बन्द हैं। क्या संघ की समाप्ति मेरे ही कार्यकाल में होगी? तो वहाँ मुझे माँ भगवती के साक्षात् दर्शन हुए। उनका शुभाशीष प्राप्त हुआ।

बैतूल के जेलर श्रीगुरुजी को यह बताने आए कि समाचार पत्रों को पढ़कर ऐसा लग रहा है कि केन्द्र सरकार संघ का प्रतिबन्ध न हटाकर और कठोर कार्यवाही करने वाली है। श्रीगुरुजी के मुख से निकला, मैं कल ही छूटने वाला हूँ, जेलर को आश्चर्य हुआ। रिलीज वारण्ट दूसरे दिन आ गए।

पूज्य श्री गुरुजी के शरीर छोड़ने के उपरान्त ही यह रहस्य खुल सका।

–लेखक अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष–विश्व हिन्दू परिषद

Shri Guruii

From Yuva Sanyasi To 'Rashtra Rishi'

P. Parameswaran

I first met Shri Guruji in a winter camp at Salem in 1946. 1 was a student doing my honours in the University College, Thiruvananthapuram. We were all stead in a hall, to be addressed by Shri Guruji. Being the first occasion, I was all expectation, if not trepidation. As Shri Guruji entered the hall, my eager eyes took him in. He was young, dynamic and had the appearance of a *Yuva Sanyasi* dressed in white *dhoti* and *kurta* over which he wore a coat. He held a staff with a metal head in hand. Brilliant, piercing eyes which directly entered into your very soul, dense, dark, flowing hair and beard completed the serene majesty of his unique personality.

Each one of us got introduced to him by turn. To each one, he asked a few questions. From the answers, he could easily size up the caliber and capacity of each one. Every one got some suggestion and guidance through this informal question and answer session. At the end we were pleasantly surprised that Shri Guruji could call everyone by his name. But what appeared strange was that this meeting of the ground level workers with the highest in the organisation was full of mirth and laughter, even while serious matters of organisation were raised, discussed and answered. All felt homely, as if they were meeting the head of the family. It took about one whole hour through we felt as if it was not even half that time. At the end when Shri Guruji stood up and left us, the living image of his unique personality was indelibly carved in everybody's heart. It was to remain there for all time to come as an object of sweet remembrance and respectful adoration.

Shri Guruji was about 40 years of age at that time. I was hardly 20. Thereafter, it was my good fortune to meet him at least twice every year and some times even more, till he passed away in the year 1973. Every meeting was a unique experience, each in its own way.

Just as the first meeting is engraved on the mind, one of the last meetings also remains undimmed. The year may be 1970 or 1971. The venue was Calicut. Shri Guruji had come for a *baithak* of senior *karyakartas*. He had grown old with silvery hairs and white beard. The staff in hand was substituted by a *kamandalu*. We were told that it was gifted to him by his revered *guru* Swami Akhandanandaji. From the dynamic *Yuva Sanyasi* that he was in 1946, he had grown and evolved into tile revered *Rashtra Rishi*. We were reminded of the galaxy of our ancient vedic sages. Age and experience had matured him into a loftiness beyond human. He seemed to be in a hurry. As the moment of departure came, we lined on either side with folded hands to have another look at him. Shri Guruji with his graceful glance and an occasional word or two moved swiftly ahead as if he was conscious that the time left was short and the mission ahead was beckoning him to hurry up. Yes, the life's journey was moving forward towards its final end. It was as moving

and unforgettable a moment as the first meeting was.

From 1940 to 1973, was a tumultuous period in our nation's history. It was through these momentous 33 years that he led the great organisation committed to his care by Dr. Hedgewar, steadily, swiftly and carefully ahead. A minor error, a small slip, a slight error would have landed the organisation in irreparable chaos or calamity in those eventful and challenging period. But he never slipped, never erred. To err is human, says the old proverb. By that standard Shri Guruji was super human. From the time of taking over from the founder to the time of handing over to his successor. Shri Guruji was wisdom and alertness incarnate. The organisation grew from strength to strength, spread over the whole of the country and even abroad wherever Hindus lived. Every area of national life was illumined and electrified by the *mantra* of Hindu *Rashtra*. Along with the growth of the movement, Shri Guruji, the one-time little known professor of the Benares Hindu University emerged and evolved into the stature of the *Rashtra Guru*, revered and respected by one and all. Irrespective of any other consideration, he won universal acceptance. But he never compromised on principles or minced words in giving expressions to his convictions. Even those politicians who were never tired of criticising him in place and out of place paid rich tribute to his services to the nation, when the Parliament adopted the condolence resolution at his passing away.

Shri Guruji's mighty personality had combined in itself two great streams of our ancient national life— the spiritual and the national. It was there in its seminal form right from the beginning of his life. In later life, both the currents mingling into one became a mighty flow. He had inherited the timeless spiritual tradition of *Sanatan Dharma* from Shri Ramkrishna Paramhansa, Swami Vivekananda and Swami Akhandanandaji Maharaj, who was his *deeksha guru*. From Lokamanya Tilak, Veer Savarkar and Dr. Hedgewar he had inherited the nationalistic stream which became inseparable part of his very constitution. Though at times, the spiritual dimension gained dominance over the other, Shri Guruji could never break away from the nationalist moorings. At first it was in uneasy co-existence which later evolved into one harmonious, single, sacred flow as in the case of Swami Vivekananda and Shri Aurobindo. The spiritual and the national so intermingled that they became identical and inseparable. Worship of the motherland became worship of the divine mother. It was the message of the sublime spiritual nationalism that he has bequeathed to us. Being fully assured that therein lies India's unique contribution to the rest of the world. For Shri Guruji, the work of Sangha was nothing but the selfless *sadhana* for fulfilling this world mission of Bharat. The Bhagirathi of Sangh *sadhana* flows on undeterred to its divinely destined goal.

-Writer is President of Vivekananda Kendra, Kanyakumari

लक्ष्य की द्रुत पुर्ति हो,
हम चाहते आशीष तुमसे
कर सकें साकार ऋषिवर,
आपकी वह कल्पना

Untouchability and Conversions - the twin problems

Historical Role of Sri Guruji

- K. Suryanarayan Rao

The pioneers of Hindu Renaissance like Maharshi Dayananda Saraswati and Swami Vivekananda had struggled a lot to bring an awareness about the perversions and divisions crept into the Hindu society and their rectification. They had given a call to free the Hindu society from the pernicious practice of untouchability. Swami Vivekananda had warned that no Hindu should be allowed to go out to any other religion. He had gone to the extent of telling, "Every person going out of the Hindu fold is not only one number less to the Hindu society, but one enemy the more." Swamiji had desired that every person who has been converted must be brought back into the Hindu fold.

Dr. Keshav Baliram Hedgewar founded the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) to organise the Hindu society getting rid of all its defects. He trained the Swayamsevaks to recognise every countryman of ours as a Hindu, without making any distinction on the basis of region, language, class or caste. When Mahatma Gandhiji and Dr. Ambedkar visited the RSS camps in thirties they were pleased to experience total equality and integrity with complete absence of untouchability or any discrimination amongst the Swayamsevaks. Whereas outside, the Hindus in general were victims of the age old evil custom. Even after independence this obnoxious practice of untouchability has persisted inspite of a law being enacted making the practice of untouchability punishable. In this situation the Christian and Muslim hawks got an excellent opportunity to feed upon the deprived and discriminated sections.

Shri Guruji Golwalkar, the second Sarsanghachalak of RSS made a thorough and an in-depth study of this problem. By and large the Hindus are religious. A certain amount of religious sentiment is associated with this practice of untouchability. The guidance of *dharmagurus* and *acharyas* who are traditionally revered by the common Hindu will be very much useful in tackling this matter. Such authorities of Hindu way of life and religion should be involved in this uphill task, was the analysis of Shri Guruji. He inspired and promoted Vishwa Hindu Parishad in 1964, which had the objective of bringing together all heads of the religious institutions of various *sampradayas*, sects and castes of Hindu society. A common forum was provided for them to think and act as one Hindu family.

The first national conference of VHP was held in Prayag — Triveni Sangam — in 1966. Nearly 50,000 delegates including hundreds of *dharmacharyas*, *Jagadgurus*, *Mahamandeleswars* participated in the conference from all parts of the country and all sections of Hindu society. Shri

Guruji thought that this was the most opportune moment to bring before the vast assembly the problem of converts and discuss about it. After a few persons spoke about the subject a resolution was put before the assembly that there should be a provision to take back, into the Hindu fold, those persons who have crossed over to other religions like Christianity or Islam, and remove the religious taboo on them in this regard. While all the delegates welcome the resolution with great enthusiasm, the then Jagadguru Shankaracharya of Puri's Govardhana Peetha, vehemently opposed stating that there is no provision in our *Shastras* for accepting the converts back. Once a person relinquishes his or her mother religion he or she becomes a *'bharashta'* and deserves to be boycotted. None can go against the *Shastras*! This was the prevailing orthodox way of thinking. There was a big disappointment all around.

Shri Guruji personally met the Shankaracharya and discussed the matter in detail. He explained to the Acharya about the dangers the Hindu society and the country has to face if this same attitude towards the converts continues. This was at the root of partition, the Kashmir problem, the continuous depletion of Hindu population and territory, the enormous growth of anti-national activities and the enemies of our country and culture making use of these gullible converts as their tools. The revered Jagadguru realised the depth of the problem. But he had already made a strong speech opposing the resolution that it would be against the *Shastras*— the written books of authority. How to go back from his pronouncement from the seal of a Jagadguru? This was the big question!

Again Shri Guruji putforth his point of view and had a frank talk with the Acharya. The poverty and ignorance of these deprived and discriminated people have been exploited to the full and they have been made the victims of allurements and threats. Exceptions if at all are only a few. The Acharya ultimately agreed and how to proceed further was also discussed. It was decided that the Jagadguru himself should speak making this point clear to the conference.

The next morning when the revered Shankaracharya rose to address, the audience were inquisitive about what the Acharya is going to speak once again. But the Jagadguru gave a very pleasant surprise! He explained that conversions have taken place by fraudulent methods exploiting the poor and ignorant conditions of the victims. They have been forcibly taken away. It is just like a robber stealthily robs money and keeps the same with himself. Actually it does not belong to him. It belongs to someone else. In the same way the converted Christians and Muslims of our country all belong to the Hindu Society. These Hindus have been robbed and taken away stealthily. These so-called converts are Hindus originally. As it is not wrong to take back one's own stolen money, it will be not wrong to take

our own Hindus back into the Hindu fold. We have to welcome them with open arms to their mother religion. There was a great applause and excitement amongst the audience, bringing enthusiasm and joy all around. The resolution was passed unanimously. Shri Pejawar Swami Jagadguru Madhwacharya of Udupi declared— *Na Hindu patito bhavet* (No Hindu will ever fall and become *bhrashta*.) All the *dharmacharyas* blessed and came forward to preside over the taking back ceremonies. A significant name *paravartan* (Home coming) was given to this procedure. The religious blot over the converts was wiped out by the highest authorities of Hindu Dharma themselves. This was a victory for the perseverant and sagacious efforts of Shri Guruji Golwalkar, opening a new chapter in the Hindu history.

The Karnataka VHP provincial conference was held at Udupi in December 1969. It had an amazing response with more than 15,000 delegates from 1200 places in the state with an equal number of visiting participants beyond all expectations. The conference was graced and blessed by about 40 heads of major religious denominations like *Shaiva, Vaishanava, Lingayat, Jain, Bodha* and *Sikh sampradayas* and about a hundered other *Sadhus*. Shri Guruji was totally involved in this conference also. He felt that it was the right moment to get the approval and blessings of the *dharmacharyas* for practicing equality amongst all Hindus without any discrimination of touchability or untouchability in their social and religious affairs. Prior to the conference itself, Shri Guruji had appealed to all the *dharmacharyas* to give a directive to the Hindu society in this regard.

The *Jagadgurus, Mahamandaleswars, Acharyas* and *Munis* had signed a statement to the effect that "In persuance of the objective of *Vishwa Hindu Parishasad* to integrate the whole of Hindu society, the entire Hindu society should be consolidated with the spirit of indivisible oneness and that there should be no disintegration in it because of the tendencies and sentiments like touchability and untouchability, the Hindus all over the world should maintain the spirit of unity and equality in their mutual intercourse."

After the inaugural session, this was the first subject taken up for discussion. This was presided over by Shri R. Bharanaiah, a learned IAS (retd) and sitting member of the Public Service Commission of the state, himself born in a so called untouchable caste. After a few persons spoke about the problem of untouchability and the signed directive of the dharamgurus was read out to the assembly the president Sri R. Bharanaiah moved a resolution that "In keeping with considered directions of the revered *dharmagurus* and *Acharyas*, this conference appeals to the Hindus to abandon any discriminatory feeling of high and low, touchable and untouchable and conduct all their religious and social affairs

on the basis of one single common Hindu brotherhood irrespective of caste, creed, birth, etc."

As soon as the president completed reading the resolution, the entire assembly burst into cheers and claps in acclamation of the resolution. All the *dharmagurus* seated on the dais heartily blessed the same. Indeed this was a moment of history worthy to be carved in letters of gold. It was a moment of victory of the true sprit of dharma over a pernicious custom. It was a moment which proved once again that the Hindu society is a dynamic race nourished with the nectar of immortality.

The entire assembly felt that it was passing through— indeed created— a great moment of history. Shri Guruji, the chief architect of this unique moment was naturally extremely happy. He desired that there should be an expression of gratitude to the *dharmagurus* for having brought this remarkable moment. Shri Guruji instructed the secretary to go up the dias and offer compliments to the *dharmacharyas* with gratitude. Accordingly the secretary spoke about the worthy role of the *dharmagurus* in this historic decision. Immediately full throated shouts of "victory" to our dharmagurus in this! long live Hindu unity" rent the skies. Even Sri Guruji also participated in this *jaikar* and clapped which he does not do usually. The Pejawar Swamiji declared— *Hindvah sodarh sarve* (all Hindus are brothers and sisters erasing the disgraceful blot of untouchability in the Hindu society). A sentimental hurdle in the way of consolidation of Hindus was successfully removed. It was established that religion or our *Shastras* have nothing to do with this pernicious custom and social evil prevailing for a long time. The discerning and judicious efforts of Shri Guruji Golwalkar was victorious once again. This was one of the happiest moments in Shri Guruji's life.

Sri R. Bharanaiah had adjusted his busy schedule of official tour, so that he may be present on the first day to preside over the session when this particular subject was to be discussed and immediately leave Udupi for his next destination. But the proceedings of the session and the overwhelming support the issue received from all sections including the orthodox made him change his mind and he requested the secretary to permit him to stay till the conference concludes on the next day evening.

In the concluding session Sri Guruji gave a sting call "now that our *dharamgurus* themselves have directed us to give up untouchability, it is the bounden duty of everyone of us to obey the directive in our own lives. We have to look upon every son of this soil, every adherent of our dharama and *samskriti* as our own brother and never inquire to what caste he or she belongs. It is only when we emphasise the unifying factors and ignore the difference that we can bring about lasting cohesion and harmony. I am telling this from my own experience in the organisations —Rashtriya Swayamsevak Sangh. By practicing the above golden

rule in Sangh we find no trace of any dissension because of caste or seet or language or any other score."

In his final benedictory message Pujya Pejawar Swamiji announced his dedication to the service of the lowly, the downtrodden and outcast. In the end the full recitation of *Vande Matram* sent the audience into silent raptures. One by one the dignitaries on dais started dispersing. Shri Guruji was standing below the dias near the steps and bidding farewell personally to everyone of them. All having dispersed, Shri Bharanaiah remained alone on the dias, immersed in emotions. He was reminded that the session was over. As he came down and saw Shri Guruji waiting, with joyous tears gushing from his eyes he firmly embraced Shri Guruji. There was silence all around for a few seconds. Then Shri Bharanaiah exclaimed in a voice choking with emotion, "Oh! how good of you that at least you have come to our rescue and taken up this mission for our sake"! Shri Guruji softly remarked, "What of me, the whole society is with you and has taken up the cause." The ecstasy of joy and gratitude for an act which had washed off the blot of injustice and humiliation of centuries, had as it were found an expression in the tears of Shri Bharanaiah.

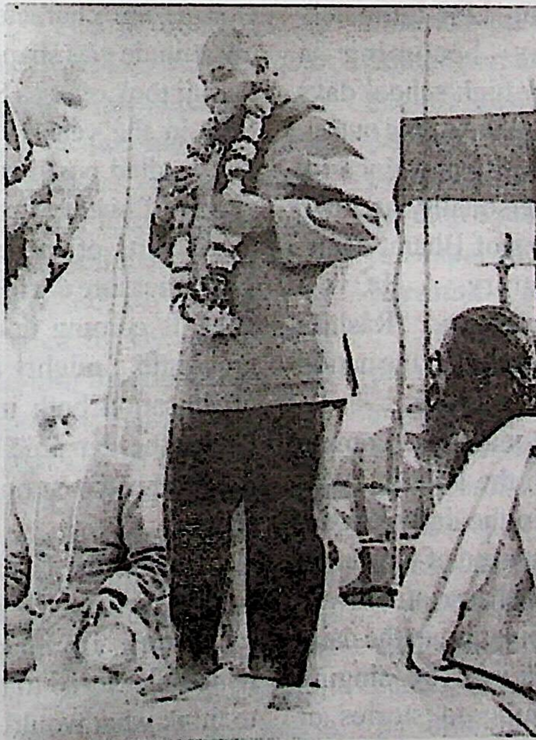
Just a month later, on the Makara Sankraman day (14.1.1970), Shri Guruji gave a down to earth and timely guidance to the workers, through a letter to the secretary in which he exhorted that, "Not to be complacent with the success of conference alone. All things will not change for the better immediately as if by magic. Centuries old prejudices do not disappear by words or wishful thinking. Hard work, right propaganda has to be undertaken from town to town, village to village, house to house and people have to be educated to accept and practice what has been resolved, not merely as a concession to the pressure of modern time but as an abiding principle and way of life, in a humble sprit of atonement for past mistakes. A change of heart, a moral and emotional change in the attitudes and behaviour has to be brought about. What we should desire and strive for is not merely economic and political 'equality'— we want a real change, a complete integration. This change beyond the power of politics of governmental plans. It is impossible to achieve it by the clever manipulations of political parties dealing in patch work in the name of integration. Strenuous work springing from the heart and manifesting itself in day to day behaviour, work on a spiritual, moral and social plan is called for and all participants in the conference, as well as all who had extended sympathy and support must come forward to put their shoulders to the wheel and with one mighty stroke shatter to pieces the age long pernicious prejudices. And may our actions succeed in bringing out the glory effulgence of our eternal Sanatana Dharma."

The writer was the then secretary of Udupi conference; former Sewa Pramukh of the RSS

कश्मीर को बचाने में

राष्ट्रनेता के नाते श्री गुरुजी की राष्ट्र की सुरक्षा और हित संवर्धन की दृष्टि से अत्यन्त जागरूक भूमिका रही। देश का विभाजन होते ही १९४७ के अक्तूबर मास के तीसरे सप्ताह में पाकिस्तान की सेना भारतीय सेनाओं में मौजूद उच्च ब्रिटिश अधिकारियों की खुली सहायता से काश्मीर को हड़पने के लिए आगे बढ़ने लगी। लोगों पर भीषण अत्याचार होने लगे। पाक सेना कश्मीर के भू-भाग पर कब्जा करने लगी। दुर्भाग्य से ऐसे आसन्न संकट के समय काश्मीर को भारत में विलीन करने के बारे में कई प्रकार की शंका-कुशंकाओं के शिकार काश्मीर के महाराजा की मनः स्थिति डोलायमान थी। ऐसे मौके पर सरदार पटेल को लगा कि, उनसे मिलकर उनके मन को भारत के अनुकूल बनाने के लिए एकमात्र श्री गुरुजी ही समर्थ व्यक्ति हैं। इसलिए श्री गुरुजी को कश्मीर भेजा गया।

कश्मीर के महाराजा हरिसिंह और महारानी तारा ने श्री गुरुजी को कश्मीरी शाल भेंट कर उनका स्वागत किया। श्री गुरुजी ने १८ अक्तूबर १९४७ को महाराजा से मिलकर उनके मन को सब प्रकार की शंकाओं से मुक्त करके भारत में अपने राज्य का विलय करने के लिए तैयार किया। तब जाकर भारतीय सेना को काश्मीर में भेजा गया। भारतीय सेनाएँ पाक आक्रामकों की धज्जियाँ उड़ाते हुए, उनके कब्जे से काश्मीर को मुक्त करते हुए आगे बढ़ने लगीं। परंतु अपनी सेना द्वारा काश्मीर को पूर्ण रूप से मुक्त करने से पहले ही पं. नेहरू ने युद्ध विराम की घोषणा कर दी और काश्मीर का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा पाक के कब्जे में रहने दिया। तत्पश्चात् जब भारत सरकार पाक आक्रमण के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने ले गई तो श्री गुरुजी ने संकेत दिया कि -''यह बिलकुल आत्मघाती निर्णय हुआ है। वह हमें न्याय दिलाने के बदले गलत निर्णय ही करेगा।''



जनसंघ के संस्थापक श्यामाप्रसाद मुखर्जी का स्वागत करते हुए लाला हंसराज जी साथ में बैठे है श्री गुरुजी

SRI GURUJI – THE DIVINE PERSONALITY

My Reminiscences

Justice Dr. M. Rama Jois

The comparison made in a popular *subhashita* to the effect that "*Ekahschandraha tamo hanti na cha tara ganancha*" only one, the moon destroys darkness but not myriads of stars" applies aptly to Sri Madhav Sadashiv Golwalkar, popularly known to the nation as Guruji, who had been the 'Sarsanghchalak' of the mighty organisation the Rashtriya Swayamsevak Sangh (the RSS) for three decades and three years. I have had the opportunity of knowing him intimately on account of my becoming a Swayamsevak from my high school days in the year 1944 in Shimoga. At the outset, I may say with all humility and sincerity that he was a divine personality and one among the greatest sons of Bharat Mata, born in the 20th century. He was incarnation of 'Dharma' and "Rashtra Dharma" whose contribution to the nation building is everlasting.

I was very fortunate in coming into the contact with the RSS in 1944. I began to participate in the daily *Shakha* named after the greatest hero of the nation in 16th century namely Chhatrapati Shivaji. By attending and participating in the daily programme of the *Shakha* by singing patriotic songs, listening to stories of patriots and *Bauddhiks* on our nationalism and cultural values, I secured good *samskara* in patriotism, character and discipline. After a few years thereafter I became acquainted with Sri Guruji by attending his *baithaks* and hearing his *bauddhiks* and public speeches. I was greatly inspired by his speeches and magnetic personality. He was a moving encyclopaedia as he had acquired profound knowledge in various branches having read more than twenty thousand books by 1940. By attending the programmes of the RSS and the guidance I received from the leaders of the RSS including those of Guruji, my character was moulded and my attitude was shaped towards the nation. Guruji took over as Sarsanghchalak of the RSS in the year 1940 and continued in that exalted position for 33 years. It is a matter of history that the RSS had spread to all parts of the country. Though in a small measure during its first fifteen years after its coming into existence, the RSS grew into a mighty and largest voluntary organisation both in Bharat and abroad. Under the dynamic leadership of Guruji, it became the strongest nationalist steel frame.

But for the founding the RSS by Dr. Hedgewar and the successful leadership of Guruji in making it the biggest nationalist force in the country, I shudder to think what would have happened to our nation at the hands of anti-national forces. I was further extremely fortunate as Guruji stayed in my newly-constructed house in

1972 at Bangalore during his penultimate visit to Bangalore, which remains ever green in the memory of myself and members of my family. I also had the benefit of meeting and hearing Guruji during 1951 and 1952 when I attended the 1st and 2nd year OTC at Tumkur and Bangalore and the 3rd year OTC at Nagpur during the year 1958. In the nature of things, I cannot claim to know about him in a large measure and further it is also not possible to write all that I know about him also. However, it is my desire to quote a few reminisences about him.

At some point of time after he came into contact with the founder of the RSS Dr. Hedgewar, he was desirous of becoming a *Sanyasi* and join *Ramakrishna muth* as he was greatly inspired by Swami Akhandananda. But the magnetic and powerful personality of Doctorji made Guruji to give up that idea and work for the nation-building activity of the RSS. Guruji himself used to say how it happened. He used to say that he met Doctorji and told him that he had decided to become a *sanyasi* and in reply Dr. Hedgewar told him that he never thought that Guruji was so selfish. Guruji was taken aback by that remarks. Then Guruji told him that "I am not taking to family life, I want to become a *sanyasi* giving up all wordly desires and still you call me selfish, which is not justified". Doctorji reitereated and said "*Yes* you are selfish because you are thinking of '*moksha*' to yourself and not to the nation". This one remark by Doctorji changed the desire and attitude of Guruji and he decided to devote his entire life to the nation. Regarding this incident Guruji used to say that from the aforesaid one remark of Doctorji, "I realised the extraordinary greatness and personality of Doctorji who was otherwise looking to be an ordinary person". After this incident Guruji devoted and dedicated his entire life, remaining a bachelor, to the cause of nation-building activitie of RSS.

Attitude towards Bharat Mata:

In order to inculcate the feeling of patriotism, Guruji had said, "One's mother, however not good-looking, illiterate or otherwise deficient, is the dearest person on earth to him. That is our attitude towards Bharat Mata." This advice greatly inspired the Swayamsevaks in particular and citizens in general to develop a sense of deep love and affection to Bharat Mata.

Partition – a sin:

Guruji was hurt and suffered acute pain about the division of the country and strongly criticised the Partition. A prominent leader who did not see any thing objectionable in the Partition said, "there is no reason to be perturbed by partition as Hindus and Muslims are brothers and it was natural and not unusual that brothers partition their property." To this Guruji said, "Yes there is nothing special about partitioning the property by brothers, but we never regarded or considered Bharat as property, but we adored and worshipped

her as our Mother and called her 'Bharat Mata' and brothers do not partition their mother. Therefore, the Partition was a sin.' There was no answer to this. However, it was too late as the Partition was fait accompli.

Indomitable courage and leadership :

It was a great misfortune of our nation that distardly assassination of Mahatma Gandhi took place and thereafter an attempt was made by the then rulers to finish the great raising nationalist force by lavelling heinous charges against the RSS to the effect that it was due to the the RSS ideology that Mahatma Gandhi was assassinated. The organisation was banned and Guruji was arrested by the central government. This was probably the most heinous act of the then Government under the leadership of Jawaharlal Nehru who had taken a vow to finish the the RSS. I can say that this period was the most painful period which I have undergone during my lifetime. On account of such onslaught, any other organisation would have perished and would have become a matter of history. But Guruji remained undaunted and provided indomitable and courageous leadership remaining unperturbed during this darkest period in the life of the Sangh. Subsequently, the ban was withdrawn but only after a powerful *satyagraha* was held throughout the Country in 1949 during which *satyagraha* I too had to suffer imprisonment in Central Jail, Bangalore.

Before and after the ban was imposed, a large number of Swayamsevaks were subjected to hardship and cruelty by those who were inimical towards the RSS. After the ban was lifted, Guruji went on a whirlwind tour throughout the country. Millions of people greeted him everywhere and listened to his powerful speeches. I still remember the mammoth public meeting held at Bangalore. Then, at a press conference Guruji was asked as to what revenge Sangh was going to take against those who inflicted injury on them.

Guruji said who are all those who inflicted injury on us. After all they are our own. As you are aware sometimes it so happens that our teeth bites our own tongue, but in view of that we don't break our teeth. That is our attitude towards those who caused trouble to us". Such was the magnanimity and quality of statesmanship of Guruji.

No time for pleasure trips in this life :

During his whole life he spent every iota of his energy and every moment in his life only in the service to the nation. He had toured the entire country for more than 50 times. Once he had come to Shimoga. The world famous, attractive Jog Falls is situated just 60 miles away from Shimoga. It was suggested by local *Sangh Adhikaris* to Guruji as to whether a trip could be arranged for him to see the magnificient Jog Falls. Guruji curtly replied "I have no time for any pleasure trips during this life." The proposal was dropped.

Utmost importance to national Unity:

Sometime in 1960, an organisation called *"Hindi Raksha Samiti"* was formed

in Punjab by protagonists of Hindi and they started a movement against the imposition of study of Punjabi. Guruji called the persons concerned and gave them a bit of his mind. He said, "Your movement is a great threat to National Unity. Punjabi is as much a national language as Hindi is. Those who are staying in Punjab are under a duty to learn Punjabi in addition to Hindi. This is a national necessity and essential for National unity". The sponsorers of the movement realised their folly and the movement died down.

***Be loyal to the country where you stay*:**

During the leadership of Guruji, RSS activities spread into several countries abroad to which a sizeable section of the Hindus had migrated for employment or business. Guruji addressed them as follows, "It is natural that you have deep love towards Bharat, but this should not in any way in the way of your unadulterated loyalty to the country where you have decided to stay and earn your livelihood.

You must strive for the progress and development of that country and should maintain cordial relationship with the original inhabitantas." This advice is being followed by all the Hindus staying in various countries of the world. If this universal outlook is followed by all the persons concerned, there will be no cause for dispute or intolerance among the people belonging to different countries staying in any country.

***Hindu Sangathan not against anyone* :**

Once Guruji was asked, as the RSS is organising only Hindus does it not prove the allegation that the RSS is against Muslims. Guruji replied, "This is nothing but a false propaganda indulged in by a few who are against Hindu *Sangathan* for collateral reasons. Even if a single Muslim was not available in Bharat, the Sangh was bound to take up the work of Hindu *Sangathan* for the reason notwithstanding noble principles and cultural values evolved in Bharat, Hindu society is divided on the basis of four *varnas*, various castes, sub-castes and untouchability. This is the problem of Hindus only and it has to be solved by them only. Therefore, Hindu *Sangathan* is a national necessity, which is based on common cultural values. It is a positive ideal and it is not against any community.

It is unfortunate that either on account of not understanding this aspect or deliberately with ulterior electoral motive, enmity is sought to be created between Hindus and Muslims and Christians. Therefore, earlier the truthful answer given by Guruji is understood by the minorities, it is good for both the majority and minority and there will be no reason for any dispute and conflict among them as our Constitution confers fundamental right to equalty on all.

***National character* :**

Guruji always gave utmost importance to national chatacter and interest. Once a leader of an opposition party who had gone abroad, severely criticised Jawaharlal Nehru. Guruji took exception to this. He

said, 'Whatever may be the differences here, when one goes abroad it is not proper to criticise Nehru there, as he was our Prime Minister and it would be inconsistent with the national character required of every citizen of Bharat.

A Swayamsevak in Karnataka fell in love with a Christian girl. He was in a dilemma whether he should marry her or not because of different religion. He met Guruji when he was here. He told his problem to Guruji who replied, "When both of you love each other, religion should be no bar to marry." Even after the marriage you follow your religion and go to temple, and let your wife go to church. The children born out of this wedlock will have the liberty of opting to the religion of their choice." They followed the advice of Guruji and lived happily. Such was the liberal attitude of Guruji.

Be an ideal Swayamsevak **:**

During the year 1958, when I had been to the 3rd year OTC at Nagpur, Guruji advised how an ideal Swayamsevak should conduct himself in his life. As it is of utmost importance and relevance today, the same is set out hereafter : For every Swayamsevak Bharat Mata is the common deity to be worshipped and the Sangh *prarthana* is the common *'mantra'* to be recited which binds all of them together including the people of this country. In every sphere of activity, namely in the family, in any profession, occupation, trade or business or in politics or in social activities, the conduct of a swayamsevak should be ideal. In the course of his speeches or actions, he shall always remember that he is a swayamsevak of this great organisation and that he shall do nothing that is derogatory or bring a bad name to this great organisation or cause any injury to national interest. In sum, he should always behave in a manner worthy of being a swayamsevak. He should always remember the prayer *"Susheelam jagdyena namrambhavet"* (Oh God confer on me such good character by seeing which others should respect me)" which is part of Sangha *Prarthana.*

The ever greatful nation is celebrating his birth-centenary for one year commencing from 24th February 2006, with the object of expanding and stregthening RSS not only in the country but also in several countries of the world. As part of this grand celebration, I am writing this article in memory of that great person.

The advice given by Guruji as mentioned above must be uppermost in the minds of every swayamsevak and he should have introspection every day and act in conformity with the advice given by Guruji. Let us utilise the yearlong celebrations of Guruji's birth-centernary to get rid of shortcomings found visible some times here and there and strengthen those qualities. This would be the appropriate tribute to be given to the divine personality of Guruji.

the writer is Former Chief Justice of Punjab & Haryana HC

गुरुजी की सभा में आर.एस.एस विरोधी पत्रिकाओं का वितरण

मुजफ्फर हुसैन

श्री गुरुजी जन्म शताब्दी समारोह सम्पूर्ण देश में उत्साह और उल्लास से मनाया जा रहा है। मैं कलम का मजदूर हूँ इसलिए अनेक पत्र पत्रिकाओं ने मुझसे आग्रह किया है कि उस पूजनीय हस्ती के साथ मेरा सम्पर्क आया हो और कोई दिल को छू लेने वाली घटना घटी हो तो मैं कलमबद्ध करके उनके कार्यालय तक पहुँचा दूँ। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सान्निध्य में मेरा परिवार वर्तमान सरसंघचालक पूजनीय सुदर्शन जी के माध्यम से 1973–74 में आया। तब तक श्री गुरुजी अपना भौतिक शरीर त्याग चुके थे और श्रद्धेय बाला साहब देवरस सरसंघचालक के पद पर आसीन हो चुके थे। इसलिये न तो होश सँभालने के पश्चात् उनके व्याख्यान सुनने का कोई अवसर मिला और न ही किसी स्थान पर निकट से उनके दर्शन करने का। लेकिन मेरी किशोरावस्था में एक घटना ऐसी घटी जो आज भी मेरे मन मस्तिष्क पर अंकित है।

गुरुजी के प्रथम बार दर्शन मैंने नीमच की एक विशाल सभा में किए। चूँकि मैं उन दिनों आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था इसलिए मेरी आयु लगभग 15 वर्ष की होगी। अपने विद्यार्थी काल में ही कुछ न कुछ लिखा करता था, जिसे उस समय नीमच से प्रकाशित दैनिक संकेत में स्थान मिलता रहता था। इन्दौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'लेखाजोखा' में भी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती थीं। इसलिए अपनी पाठशाला के गुरुजनों का मुझे भरपूर प्रेम मिला करता था। नीमच में ज्ञान मंदिर नामक पुस्तकालय के परिसर में उन दिनों संस्कृत की कक्षाएँ लगा करती थीं। संस्कृत पढ़ाने वाले गुरु पंडित शिवनारायण जी गौड थे। वे शाला में हमारे हिंदी शिक्षक थे। मैं उनसे बुहत प्रभावित था। हम चार मित्र उनके विशेष शिष्यों में थे। उन में शिवदत्त ओझा, ओम प्रकाश एरन और ब्रज मोहन मुख्य रूप से थे।

1960 में गुरुजी के बौद्धिक का कार्यक्रम नीमच में आयोजित किया गया। अत्यन्त विशाल सभा थी। दूर–दूर से स्वयंसेवक पूर्ण गणवेश में आए थे। कार्यक्रम आजाद मैदान पर था। गाँधी सागर बाँध के शिलान्यास के लिए जब भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की जनसभा का कार्यक्रम तय हुआ तो आजाद मैदान में एक विशाल मंच उस समय के नगर पालिका अध्यक्ष श्री रघुनंदन प्रसाद जी ने निर्माण करवाया था। नेहरुजी की इस सभा के पश्चात् जो भी महान व्यक्ति नीमच में आता वह इसी मंच से जनता को सम्बोधित किया करता था। इसलिए गुरुजी का बौद्धिक भी इस मैदान में होगा– यह तय हो गया।

कार्यक्रम बनने के पश्चात् नीमच के कुछ प्रभावी लोगों ने यह तय किया कि गुरुजी के विरुद्ध पत्रिका वितरित की जानी चाहिए। हमारे पंडित जी से उक्त पत्रिका तैयार कराई गई। उसमें मुख्य रूप से चार प्रश्न गुरुजी से पूछे गए थे। नीमच के तत्कालीन कांग्रेस के महामंत्री स्वार्गीय गुलाब चंद जी सेठी ने हमें लाकर कुछ पेम्फलेट दिए और कहा कि उन्हें

गुरुजी की सभा में वितरित करना है। साथ ही यह भी कहा कि यह 'पंडितजी' का आदेश है। पास में खड़े बड़ी मूछों के धनी पंडित रामानंद जी ने हमें इन पत्रिकाओं को वितरित करने का गुर बतलाया। उन्होंने कहा जहाँ सभा चल रही हो वहाँ जाकर स्वयंसेवकों के पीछे पंक्ति में बैठ जाना और फिर अपनी जेब से इन पत्रिकाओं को निकाल कर जमीन पर रख देना। बाद में उस पर कुछ कंकड़–पत्थर रखकर वहाँ से उठ जाना। थोड़े समय के पश्चात् लोग अपने आप पेम्फलेट ले लेंगे और पढ़ने लगेंगे।

मैं उत्साहित होकर अपने मित्रों के साथ वहाँ पहुँच गया। मेरे तीनों मित्रों ने अपना काम शुरु कर दिया। लेकिन कुछ ही देर में किसी ने देख लिया और वे सभा स्थल से चले गए। लेकिन मैं तीन स्थानों पर सफल हो गया। स्वयंसेवक बंधु उक्त पत्रिका को पढ़ने लगे। चौथी बार ज्यों ही अपना काम शुरु किया कि मंच से उतरकर श्री जगदीश खंडेलवाल जो उन दिनों नगर संघचालक थे मेरे पास आ गए। मैंने ज्यों ही पेम्फलेट निकाले उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और जोरदार थप्पड़ मारा। मैं उस समय टोपी पहनता था। मेरी टोपी गिर पड़ी। वे खींचते हुए मुझे मंच पर ले गए और उस स्थान पर बैठा दिया जहाँ पू. श्रीगुरुजी सभा को सम्बोधित कर रहे थे। वहीं पर तत्कालीन सांसद बेरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी भी बैठे हुए थे। वे मुझे इस तरह से घूर रहे थे मानो कच्चा चबा जाएँगे। गुरुजी क्या कह रहे थे वह मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया।

लेकिन मैंने वहाँ से देखा कि एक स्वयंसेवक बीड़ी पी रहा था। गुरुजी ने भी उसे देखा और अपनी उँगली से बीड़ी को फेंक देने का आदेश दिया। उस स्वयंसेवक ने तत्काल बीड़ी फेंक दी। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतनी बड़ी भीड़ में इस व्यक्ति ने यानी गुरुजी ने इसे बीड़ी पीते किस प्रकार देख लिया? और इस व्यक्ति का कितना बड़ा प्रभाव कि बिना कुछ कहे बीड़ी फेंक दी। मैं इस घटना से बड़ा प्रभावित हुआ और गुरुजी की तरफ बड़ी तल्लीनता से देखने लगा।

सभा समाप्त हुई तो मैं समझा अब मेरी पिटने की बारी आ गई। बेरिस्टर साहब गुजराती में पूछने लगे तू केनो छोकरो छे?.. . मैंने अपने परिवार के बारे में सब कुछ बतला दिया। मुझे लगा अब वे बहुत मारेंगे। उन दिनों आर.एस.एस. के स्वयंसेवक को पट्ठा कहा जाता था और उन पर आरोप था कि वे बहुत क्रूर होते हैं। मुझसे जगदीश भाई ने पूछा कि तुझे यह पत्रक किसने दिए और तेरे साथ इन्हें बाँटने वालों में कौन–कौन थे? मैंने सभी का नाम बतला दिया।

सभा–स्थल से बेरिस्टर साहब का बँगला बहुत दूर था। माननीय गुरुजी को बेरिस्टर साहब अपनी कार में उनके बँगले पर ले गए। कार में मुझे भी बैठा दिया गया। बँगले पर जब पहुँचे तो गुरुजी ने पूछा तुम्हारा नाम क्या है? मैंने अपना नाम बतलाया तो उन्होंने पूछा इसका क्या अर्थ होता है? मुझे अर्थ मालूम नहीं था। फिर पूछा कौन सी कक्षा में पढ़ते हो। मैंने बतलाया आठवीं कक्षा में। तुम्हें सबसे अच्छा विषय कौन सा लगता है? मैंने कहा भूगोल और हिन्दी। तब पूछा हिंदी में कोई कविता

याद है। मैंने कहा रसखान के पद मुझे याद हैं। अच्छा सुनाओ? मैंने तीन पद सुना दिए। इसके अतिरिक्त कौन सी कविता याद है? मैंने कहा माखनलालजी चतुर्वेदी की 'फूल की अभिलाषा'। वे कहते, उससे पूर्व ही मैं सुनाने लगा। उन्हें बहुत अच्छा लगा। फिर बोले तुम तो अच्छे बच्चे हो, ऐसा काम क्यों करते हो? मैं कुछ बोला नहीं केवल उनके मुख की ओर देखने लगा। उनकी दृष्टि मेरे मुख पर पड़ी तो मुझे ऐसा लगा कि मेरे पिता मुझको पुचकार के नसीहत कर रहे हैं। अपने खाने की थाली में से मुझे खीर की कटोरी दी और कहा खा लो... मैंने खीर खा ली। वह कितनी स्वादिष्ट थी यह तो याद नहीं है, लेकिन मैं केवल उनके मुख की ओर देखता ही रहा, देखता ही रहा। फिर कहा जाओ, अब ऐसा कभी मत करना।

बाहर सड़क पर मैं आ गया.... आज की तरह वहाँ मकान नहीं बने थे, लेकिन बहुत दूर पर सेठी और रामानंद जी खड़े थे। इतने में कुछ और लोग भी आ गए। मुझसे पूछने लगे तुझे कहाँ मारा?

.... मैंने कहा बिल्कुल मारा नहीं बल्कि उन दाढ़ी वाले बाबा ने मुझे खीर खिलाई और मेरी दो कविताएँ सुनी।

मुझे आज भी याद है जब मैं बेरिस्टर साहब के घर से निकल रहा था उस समय पूजनीय गुरुजी ने मेरे सर पर हाथ रखा और मेरी पीठ सहलाकर मुझे आशीर्वाद दिया।

नेपाल के साथ भावबंधन

श्री गुरुजी 1963 को शिवरात्रि के शुभ दिन नेपाल में काठमाण्डू के भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन के लिए गए। उसके पश्चात् वहाँ के महाराजा महेन्द्र से उनकी अत्यन्त सौहार्दपूर्ण भेंट हुई। उस समय वहाँ के प्रधानमंत्री श्री तुलसी गिरि भी उपस्थित थे। 1962 के चीनी आक्रमण में भारत की करारी हार के कारण नेपाल का चीन की ओर झुकाव हो गया था। नेपाल नरेश के मन में भारत के बारे में कुछ अन्य शिकायतें भी थीं। श्री गुरुजी ने नेपाल नरेश को यह आश्वासन दिया कि वे दिल्ली के सत्ताधारियों को ये सारी बातें बताएँगे।

काठमाण्डू से वापस आते ही श्री गुरुजी ने श्री लालबहादुर शास्त्री और पं. नेहरू को पत्र लिखकर नेपाल नरेश से हुई भेंट का वृत्त विस्तार से लिखा और यह सुझाव दिया कि भारत की ओर से नेपाल के साथ सौहार्दपूर्ण और सम्मानपूर्वक व्यवहार होना आवश्यक है तथा चीनी विस्तारवाद के खतरे का संकेत करते हुए भारत के उद्देश्यों और नीतियों के संबंधों में नेपाल नरेश के मन में विश्वास उत्पन्न करना आवश्यक है। इस पत्र का पं. नेहरू की ओर से तत्काल दिनांक एक मार्च को जो उत्तर आया उसमें श्री गुरुजी के अधिकांश विचारों से सहमति प्रकट की गई थी। आगे 1965 में जब श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री लालबहादुर शास्त्री से मिले तब उन्होंने कहा था कि, 'मेरे नेपाल प्रवास के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार कर नेपाल-भारत मैत्री दृढ करने का मेरा तीन चौथाई काम श्री गुरुजी अपने नेपाल दौरे द्वारा पहले ही कर चुके थे।''

आज भी जब उस महापुरुष की तस्वीर के आगे खड़ा हो जाता हूँ तो वे यही कहते सुनाई पड़ते हैं....... 'रसखान का एक पद और सुनाओ'

उनका हाथ मेरी पीठ पर है, वे मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं.............।।

याददाश्त

80 के दशक में विदर्भ के अनेक नगरों में 'सम्मित्र सभा' नामक एक संस्था काम करती थी। नागपुर के स्वर्गीय बाला साहब गौरे उसके संयोजक थे। सम्मित्र सभा की एक शाखा अकोला नगर में भी थी। शंकरलालजी खंडेलवाल अकोला में इस सभा का काम देखते हैं। मुझे उन्होंने एक बार इस संस्था में व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया। मेरा निवास उनके घर पर ही था। श्री खंडेलवालजी का परिवार वर्षों से संघ के काम के प्रति समर्पित था। उन्होंने संघ से जुड़ी अनेक बातें बतलाईं। उसमें एक संस्मरण पूजनीय गुरुजी से भी जुड़ा हुआ था। खंडेलवाल जी कहने लगे गुरुजी की स्मरण शक्ति गजब की थी। वे जिससे एक बार मिल लेते थे उसे वर्षों बाद भी नाम से ही पहचान लिया करते थे। यह भी बतला देते थे कि उनकी भेंट कहाँ हुई थी?

अपने घर से सम्बन्ध में भी उन्होंने एक ऐसी ही घटना को याद करते हुए कहा— "श्री गुरुजी अकोला कई बार आए। लेकिन मुझे अपने घर पर उनकी सेवा करने का दो बार लाभ मिला। मेरे घर पर जब पहली बार ठहरे, उसके 15 वर्ष पश्चात् पुनः अकोला आगमन पर उसी कमरे में उनके निवास की व्यवस्था की गई थी। दूसरी बार जब आए तो पास वाले कमरे में रात को मैं भी सोया हुआ था। सम्भवतः रात के दो बजे होंगे। गुरुजी लघुशंका के लिए उठे। मैं भी हड़बड़ाहट में उठ खड़ा हुआ। कमरे में अंधकार था इसलिए मुझे कमरे की और बाथरूम की लाइट खोलना आवश्यक था। मैं कमरे में प्रवेश करूँ, उससे पूर्व गुरुजी ने कहा, 'शंकरलाल चिंता मत करो मुझे मालूम है कि बाथरूम की लाइट सीधे हाथ की ओर दूसरे नम्बर पर है'। मैं यह सुनकर अवाक रह गया...... प्रातःकाल जब मैंने पूछा तो गुरुजी ने मुस्कुरा कर कहा 'अरे 15 वर्ष पहले मैं इसी स्थान पर ठहरा था। तुम्हारे बाथरूम की लाइट का बटन वहीं पर होगा— ऐसा मुझे विश्वास था'।

15 वर्ष पूर्व की बात और वह भी इतनी छोटी बात कि जिसे हम अपने सामान्य जीवन में याद रखने की आवश्यकता नहीं समझते। जिस बटन का हम दिन में कई बार उपयोग करते हैं उसका क्रम हम भूल जाते हैं लेकिन परम पूज्य गुरुजी नहीं भूले। इतनी दृढ़ स्मरण शक्ति के धनी थे हमारे संघ के द्वितीय सरसंघचालक।"

—लेखक राष्ट्रवादी मुस्लिम आन्दोलन के प्रणेता

'वे वास्तव में महापुरुष थे वे मुस्लिम विरोधी नहीं थे मुस्लिम विरोध के नाम पर आज तक मुसलमानों को संघ के नाम पर बरगलाया जाता रहा है" —कांग्रेसी नेता श्री हाफिजुद्दीन कुरैशी



संस्मरण

महाराणा भगवतसिंह मेवाड़

वीर शिरोमणियों में उदयपुर के महाराणा भगवतसिंह जी को संघ के संपर्क में लाने के विचार से पू. श्री गुरुजी ने उन्हें एक बार गुजरात के प्रान्तीय सम्मेलन में बुलाया था। वहाँ उन्होंने देखा कि चार–पाँच हजार लोग बड़े अनुशासन में काम कर रहे हैं। वे बहुत प्रभावित हुए। बाद में वे उदपयुर में संघ का कार्यक्रम देखकर भी प्रभावित हुए।

एक बार उदयपुर में राजस्थान के संघ शिक्षा वर्ग लगने की जानकारी जब महाराणा भगवतसिंह जी को मिली तो उन्होंने राजस्थान के अधिकारियों से कहा कि पू. गुरुजी उदयपुर पधारेंगे तो मेरा आग्रहपूर्वक निवेदन है कि एक बार वे मेरे यहाँ महल में अवश्य पधारें।

इस विषय में जब मैंने डा. आबाजी से बातचीत की तो उन्होंने मना कर दिया और कहा कि संघ शिक्षा वर्ग के बीच में से निकलकर मिलने जाना सम्भव नहीं है। यह संघ शिक्षा वर्ग का नियम है।

हमने उनसे कहा कि एक बार आप पू. श्री गुरुजी से पूछ लो। पू. श्री गुरुजी को बताए जाने पर उन्होंने कहा कि आबा हम जब उदयपुर चलेंगे तो पहले महाराणा भगवतसिंह जी के महल में चलेंगे उसके पश्चात् संघ शिक्षा वर्ग में चलेंगे। इस प्रकार अपनी स्वीकृति उन्होंने दे दी।

मैं, राधाकृष्णजी रस्तोगी तथा बजाज जी – हम तीनों पू श्री गुरुजी और आबाजी को लेकर महल में पहुँचे। तब महाराणा भगवतसिंह जी ने बाहर आकर स्वागत किया और आदर के साथ अन्दर ले जाकर बैठाया। बैठे ही थे तो उन्होंने कहा कि बजाज जी मैं पू. श्री गुरुजी से थोड़ी देर अलग से बात करना चाहता हूँ। वे पू. गुरुजी के साथ अलग एक कमरे में चले गए। वहाँ से आधे घण्टे पश्चात् वापस आए और बड़ी प्रसन्न मुद्रा में महल में लगे चित्रों– बप्पारावल, राणासांगा आदि को दिखाकर अचानक

रुककर बोले कि 'बजाज जी पहले बड़े–बड़े राज़ाओं के राजगुरु हुआ करते थे। मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे पू. श्री गुरुजी जैसे गुरु मिल गए। जीवन में मुझे जैसी आज्ञा देंगे– मैं जीवनभर उसी के अनुसार चलूँगा।' उसके बाद महाराणा साहब संघ शिक्षा वर्ग में भी पधारे। बाद में महाराणा भगवतसिंह को विश्व हिन्दू परिषद् के अखिल भारतीय अध्यक्ष भी बने।

उनको संघ के प्रभाव से हटाने के अनेक प्रयासों के बावजूद वे जिन्दगी भर संघ के साथ ही रहे। मेवाड़ के महाराणा भगवत सिंह जी पर श्री गुरुजी का ऐसा असर हुआ था।



जनरल नाथूसिंह

उदयपुर में एक बार लगभग 1000 स्वयंसेवकों का पथ संचलन था। डूंगरपुर जिले के एक ठिकाने के सरदार जनरल नाथूसिंह को वह संचलन देखने के लिए बुलाया गया था। सूचना के साथ ही पथ संचलन का समय दिया हुआ था कि संचलन कब–कब, कहाँ–कहाँ पहुँचेगा। उस पत्रक को देखकर जनरल नाथू सिंह की टिप्पणी थी कि इस प्रकार समयानुसार संचलन करना तो सेना के लिए भी बड़ा कठिन होता है। ये नागरिक लोग इस प्रकार समय का कैसे पालन कर सकेंगे? यह असम्भव है। उनको कहा कि आप इसे आकर देखें। इसके पश्चात् उन्होंने पाँच–सात जगह से संचलन को देखा तो पाया कि जो समय पत्रक में दिया हुआ है, संचलन उसके अनुसार बराबर पहुँच रहा है। वह यह देखकर बड़े प्रभावित हुए। आश्चर्य भी प्रकट किया।

जनरल नाथू सिंहजी ने गुरुजी के प्रभाव और उनकी कुशलता को देखकर हम लोगों के सामने ही कहा कि पू. गुरुजी आप देश की बागडोर सीधे अपने हाथ में क्यों नहीं लेते? राजनीति में कच्चे एवं विफल रहने वालों के हाथ में देश को क्यों दे रखा है?

पू. गुरुजी ने कहा कि राजनीति में सीधा प्रवेश करना, चुनाव लड़ना और सत्ता प्राप्त करना– यह हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो संस्कार देने का है।



संत दाता महाराज

राजस्थान के सन्तों में दाता महाराज हुए हैं। सन् 1950–52 की बात है। जलमहल के पास लगभग 1500 स्वयंसेवकों का तीन–दिवसीय शिविर था। उसमें प.पू. श्री गुरुजी पधारे हुए थे। उस समय दाता महाराज अपने कुछ अनुयायियों के साथ दिल्ली से जयपुर होते हुए उदयपुर जा रहे थे। जयपुर आने पर उनको पता लगा कि यहाँ संघ का शिविर लगा हुआ है और उसमें प.पू. श्री गुरुजी पधारे हुए हैं तो दाता महाराज उनसे मिलने के लिए रुक गए। जब पू. श्री गुरुजी को इसका पता लगा तो पू श्री गुरुजी उनसे मिलने आए। आते ही दाता महाराज ने कहा कि गुरुजी महाराज मेरे राम को आपके अन्दर ऐसा तेज और प्रभाव दिखाई देता है कि यह सारे संसार में आपके यश को फैलाएगा। आपकी कीर्ति और आपके संगठन को, जिसमें आप काम कर रहे हैं, अपूर्व सफलता मिलेगी।

जुगल किशोर बिड़ला

दिल्ली में जुगलकिशोर बिड़ला बड़े धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। एक बार बिड़ला जी को श्री गुरुदक्षिणा के कार्यक्रम में बुलाया था। वे कार्यक्रम में आए और स्वयंसेवकों को 'लिफाफे में रखा निजीधन' समर्पित करते देखा तो वहाँ उन्होंने संघ की प्रशंसा करते हुए अपना उद्‌बोधन भी दिया और जब जाने लगे तो उन्होंने एकदम गाड़ी रोककर कहा कि आप लोग भी बड़े विचित्र हैं। मुझे कोई भी ले जाता है, तो पैसों के लिए ले जाता है और पैसे माँगता है। आपने कुछ भी नहीं माँगा– यह आश्चर्य की बात है। फिर बोले कि यह लो पाँच हजार रुपए संगठन के लिए देता हूँ। तब छोड़ने के लिए आए श्री वसन्तराव जी ओक ने कहा कि नहीं बिड़ला जी हम तो किसी से चन्दा लेते ही नहीं। बिड़ला जी ने उनसे पूछा कि आपका खर्चा वगैरह कैसे होता है? तब वसन्तराव जी ने कहा कि हमारा हरेक स्वयंसेवक श्रीगुरु दक्षिणा करता है। सामर्थ्य के अनुसार करता है। तो वह बड़े प्रभावित हुए। बिड़ला जी उन दिनों बिड़ला मन्दिर में ही रहते थे। उन्होंने वहाँ कहा कि मैंने ऐसा एक ही संगठन देखा है, जो अर्थ के बारे में बिल्कुल लालची नहीं है। मैंने ध्वज पर पैसा न चढ़ाकर उनको वैसे देना चाहा तो उन्होंने वह अस्वीकार कर दिया।

एक बार दिल्ली में पू. श्री गुरुजी वहाँ के कार्यकर्ताओं की बैठक में तीन दिन के लिए थे। मुझे इसका ध्यान था। मैंने जुगलकिशोर जी बिड़ला को ले जाकर प.पू. श्री गुरुजी से मिलवाया। मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। बातचीत में श्री गुरुजी ने कहा– 'सेठजी! हमने, चिन्मयानन्दजी ने तथा कुछ संतों ने बैठकर विचार किया है कि शीघ्र ही विश्व हिन्दू परिषद् संगठन प्रारम्भ करें'। तब वे कहने लगे कि कई लोग बैठकर विचार करते हैं। उनके मन्सूबे खत्म हो जाते हैं। संगठन चालू ही नहीं होता। ऐसा मुहूर्त देखकर चालू करो कि संगठन शुरु हो और चलता ही रहे।

प.पू श्री गुरुजी बोले– सेठजी, हमारा संगठन जिस काम को चालू करता है औरं हाथ में लेता है, उसके लक्ष्य की प्राप्ति होने तक वह लगा रहता है, प्रयासरत रहता है।



दिव्य दृष्टि

एक बार प. पू. श्री गुरुजी चित्तौड़ प्रवास पर थे। तभी जब चीन ने भारत पर हमला कर दिया था। हमले से एक दिन पहले चित्तौड़ के सार्वजनिक कार्यक्रम में उन्होंने कह दिया था कि चीन ने हमला कर दिया है। जबकि उस समय तक किसी को भी इसका पता नहीं था।

दूसरे दिन जब समाचार पत्रों में आया कि चीन ने हमारे देश पर हमला कर दिया है, तो उनसे पूछा कि आपको पता कैसे चला? तब उन्होंने कहा कि जो भारतमाता की श्रद्धापूर्वक

आराधना करता है, उसको भारतमाता ऐसी दिव्य दृष्टि दे देती हैं कि उस पर आने वाली विपत्ति की सूचना उसको पहले ही पता चल जाती है। इस कारण ही मुझे सूचना पहले से ज्ञात हो गई।



आध्यात्मिक दृष्टि

एक बार पू. श्री गुरुजी ने बताया कि कोई भी साधक और सिद्ध पुरुष कभी भी अपनी साधना की बात या सिद्धि को मुँह से प्रकट नहीं करता। सिद्ध पुरुष के चेहरे को देखने से ही पता लग जाए– ऐसा बहुत कठिन है। उनके साथ सम्पर्क करने से ही पता लगता है कि ये कैसे गहरे आध्यात्मिक और उच्च श्रेणी पर पहुँचे हुए हैं। ऐसे ही एक बार हुक्माणी जी के घर ठहरे हुए थे तो हुक्माणी जी ने उनसे पूछा, 'गुरुजी आध्यात्मिक दृष्टि से हमारे कल्याण, आत्मोत्थान के लिए कुछ बताइए'। उन्होंने एक–दो बार तो टाल दिया फिर बोले, 'हुक्माणी जी आप मंत्र सहित 25 सूर्यनमस्कार किया करो। सूर्यनमस्कार एक अकेला ऐसा है, जिसमें मंत्र भी हैं और शारीरिक व्यायाम भी है। इसके करने से शारीरिक क्षमता और पुष्टता भी आती है और मन भी ठीक रहता है। बुद्धि में भी ज्ञान जगता है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी वह आगे चलकर भगवत साक्षात्कार करने वाली क्षमता को प्राप्त कर लेता है। इसलिए आप तो मंत्र सहित सूर्यनमस्कार करो। इससे सब प्राप्त हो जाएगा।'



स्त्रीमात्र के लिए सम्बोधन 'माँ'

एक बार जब हम जोधपुर से बाड़मेर जा रहे थे तो लूणी जंक्शन पर हरिओम जी, जो अभी जोधपुर कार्यालय में प्रमुख हैं, एक विद्यालय में अध्यापक थे। वे अपनी पत्नी के साथ प.पू. श्री गुरुजी से मिलने आए थे। आते ही उनकी पत्नी को पू. श्री गुरुजी ने कहा कि यह बहू माँ है क्या? 'माँ' नाम लेते ही हरिओम जी बोले, 'यह तो आपकी पुत्री समान है। आपने इसे माँ कैसे कह दिया?' तब पू. श्री गुरुजी कहने लगे कि अपने हिन्दू समाज की परम्परा में सदा हरेक महिला को 'माँ' कहने का रिवाज है। बंगाल में आप आज भी जाएँगे तो वहाँ पर बहू को 'बहू माँ', बेटी को 'बेटी माँ' कहेंगे। बहिन को 'बहिन माँ'। माँ को तो 'माँ' कहेंगे ही। वहाँ स्त्रीमात्र के साथ 'माँ' लगाने का रिवाज है। इसके बाद उन्होंने मुझे बुलाया। मैं हर कलकत्ता साल जाता था। पू. श्री गुरुजी ने मुझसे पूछा कि बंगाल में महिलाओं को क्या सम्बोधन करते हैं? मैंने यह बात बताई कि बेटी को 'बेटी माँ, बहिन को 'बहिन माँ', बहू को 'बहू माँ' और हरेक महिला के साथ माँ लगाते हैं। तब जाकर हरिओम जी को शान्ति हुई।



–गिरिराज शर्मा, राजस्थान में संघ के वरिष्ठ प्रचारक
तथा संस्कृत मासिक 'भारती' के प्रबन्ध संपादक

THE TASK AHEAD

Shri Guruji's letter to K. Suryanarayan Rao, Secretary of Udupi conference

The Karnatak provincial conference of the Vishwa Hindu Parishad is over. It was a grand affair beyond even the most extravagant expectations of the conveners and workers. Naturally its success has roused great expectations in the minds of all. But I think it will not be reasonable to suppose that all things will change for the better immediately as if by magic. Hard persistent work is called for. Indeed the conference may be rightly considered to be a clarion call to untiring efforts for the all round betterment and consolidation of the Hindu people. The success of the conference should not make us complacent.

To, take an example : The resolution on untouchability - blessed by all our *Acharyas* and *Dharmagurus, Mathadhipatis* and other holy men of all our sects - cannot be translated into actual life by mere pious expressions. Centuries old prejudices do not disappear by words or wishful thinking. Hard work, right propaganda has to be undertaken from town to town, village to village, house to house and people have to be educated to accept and practice what has been resolved, not merely as a concession to the pressure of modern times but as an abiding principle and way of life, in an humble spirit of atonement for past mistakes. A change of heart, a moral and emotional change in attitudes and behaviour has to be brought about. Working for the economic and political betterment of those who had been relegated to the background and bringing them up to stand shoulder to shoulder with all the rest of our people is a Herculean task. But this in itself is not enough for such 'equality' may be brought about without shedding the feeling of separateness. What we should desire and strive for is not merely economic and political 'equality' —we want a real change a complete integration. This change is beyond power of politics of governmental plans. It is impossible to achieve it by the clever manipulations of political parties dealing in patch work in the name of integration. Strenuous work springing from the heart and manifesting itself in day to day behaviour, work on a spiritual, moral and social plane is called for and all participants in the conference, as well as all who had extended sympathy and support must come forward to put their shoulders to the wheel and with one mighty stroke shatter to pieces the age long pernicious prejudices.

Another important task is educating our people in the principle and practice of dharma in both aspects— the general and

all comprehensive one; and the norms of the particular sect one may have been born into or later accepted. This education has to begin with ourselves, for no one wanting to educate others can do so effectively without first educating himself and putting into practice what he has learnt and what he wants to teach. Burning faith and absolute devotion, purity of character, of words, feelings and deeds alone can confer on one the authority to teach others. And so we have to cultivate assiduously these great qualities.

We have to carry this education to the remotest corners of our country, to those for whom dharma has been reduced to a mere bundle of crude superstitious rites, to those who never had the opportunity to learn and live dharma - in far off villages in the hills and in the dense forests. We must expect hardships troubles and tribulations in this work and often we may feel that it has been a thankless task . But without expecting immediate results or miracles to happen, we must face the hard facts and with infinite patience plod on – to success in the true spirit of a *karmayogi.*

Many workers appear to take a delight in blaming others for all ills .Some may put the blame on the political perversities , others on the aggressive activities of the Christians or Muslims and such other faiths. Let our workers keep their minds free from such tendencies and work for our people and dharma in the right spirit, lend a helping hand to all our brethren who need help and strive to relieve distress wherever we see it . In this service no distinction should be made between man and man . we have to serve all be he a Christian or a Muslim or a human being of any other persuasion for calamities, distress and misfortunes make no such distinction but afflict all alike. And in serving to relieve the sufferings of man let it not be in a spirit of condescence or mere compassion but as devoted worship of the lord abiding the heart of all beings, in the true spirit of our dharma of surrendering our all in the humble service of Him who is Father, Mother, Brother, Friend and everything to us all :

And may our actions succeed in bringing out the glory and effulgence of our sanathana— eternal-dharma.

M.S Golwalkar

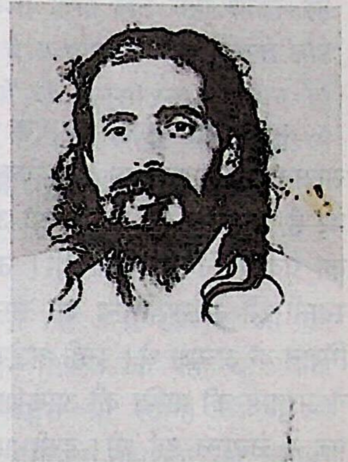
MakarSankraman
Shaka1891
14-01-1970

* * * * * * * *

हमारी वास्तविक समस्या यह है कि सामने कोई स्पष्ट लक्ष्य तथा ध्येयप्राप्ति का विचार नहीं है। उसके बिना कोई भी देश महान नहीं बन सकता। हमें केवल अपना अस्तित्व बनाए रखने के स्थान पर सार्थक जीवन जीना है। भारत का विश्व को संदेश है कि आध्यात्मिकता व्यावहारिक जीवन में बाधक नहीं है, वह तो उसे सार्थक बनाती है।

–श्री गुरुजी

श्री शंकराचार्य पद के योग्य मैं नहीं



जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य महाराज
श्री शारदा पीठम् मुबई श्री महाबल भट्ट
मुंबई, 11 अप्रैल 1960

ब्रह्मीभूतानां परमश्रद्धेय श्री भारतीकृष्ण तीर्थानाम् अंतिमेच्छापत्रके प्रकाशितेषु उत्तराधिकारिणां नामसु मदीयमपि नामधेयं मया अवलोकितम् आसीत्।

तत्पीठाधिरोहणेच्छा कदापि मम मनसि नासीत् नास्ति चेति सविनयम् निवेदयितुमव पत्रमिदं लिख्यते। जगद्‌गुरु पीठाधिरोहणे अपेक्षितानां पाण्डित्यवैराग्यतपश्चर्यादिगुणानाम् अभावम् आत्मनि पश्यामि। तादृशैः गुणगणैः संपन्नः कोऽपि महात्मा एव तत् सकलविश्वश्रेद्धेयं जगद्‌गुरुपीठम् अलंकर्तुम् अर्हति।

हिंदी अनुवाद–

ब्रह्मीभूत परमश्रद्धेय श्री भारतीकृष्ण तीर्थ की अंतिम इच्छा के संबंध में प्रकाशित पत्रक में उत्तराधिकारी की नामावली में मेरा भी नाम देखा। उस पीठ पर आरूढ़ होने की इच्छा न कभी मेरे मन में निर्माण हुई और न है। यह सविनय सूचित करने के लिए मैंने यह पत्र लिखा है। जगद्‌गुरु के पीठ पर आरूढ़ होने के लिए अत्यावश्यक पांडित्य, वैराग्य, तपश्चर्या आदि गुणों का मुझमें अभाव है। ऐसे गुण समुच्चय से संपन्न कोई महापुरुष ही उस अखिल विश्व में श्रद्धेय जगद्‌गुरु पीठ को सुशोभित करने के योग्य हागा।

'भगीरथ कठोर तपश्चर्या करके, स्वर्ग में बहने वाली गंगा को पृथ्वी पर लाए और भारतवर्ष को सुजल, सुफल बनाया। वैसे ही प.पू. डाक्टरजी ने मोक्ष के रास्ते पर प्रस्तुत प.पू. श्री गुरुजी के जीवन-प्रवाह को भारतीय जनता के कल्याण के लिए, धरातल पर लाकर हिन्दू समाज को संगठित और सशक्त बनाने के स्वयं द्वारा प्रारम्भ किए कार्य को सफलता की ओर बढ़ाया।''

–मा.गो.वैद्य

साधक जीवन!

ह. वि. दात्ये

मुर्शिदाबाद जिले का एक छोटा–सा ग्राम सारगाछी कलकत्ता से 177 किलोमीटर की दूरी पर है, जहाँ श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्द जी का प्रदीर्घ निवास हुआ था। उन दिनों श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्द जी रामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष थे। इन्हीं श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने अनुग्रह की प्राप्ति की आकांक्षा श्री गुरुजी के मन में उत्पन्न हुई थी। इसी अनुग्रह प्राप्ति के आकर्षण से ही श्री गुरुजी घर–द्वार, नाता–रिश्ता, मान–सम्मान, पुरजन–परिजन आदि सबका नागपुर में ही परित्याग करके पाशरहित, ममतारहित होकर सारगाछी पहुँच गए थे। नागपुर स्थित रामकृष्ण मिशन के श्री अतिताभ जी महाराज का बहुत बड़ा हाथ था श्री गुरुजी को सारगाछी पहुँचा देने में। वहाँ पहुँचते ही श्रद्धेय श्री स्वामी जी के दर्शन हुए और 30 वर्ष की आयु में श्री गुरुजी की नई साधना का शुभारम्भ हुआ।

साधना की प्रवेश परीक्षा

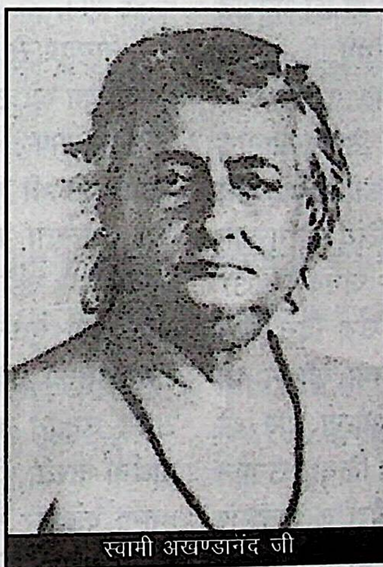
शीघ्र ही दीपावली आने वाली थी और अमावस्या को होनेवाली कालीपूजा का वातावरण बनने लगा। इस पूजा का विधि–विधान जटिल होता है और वह प्रदीर्घ काल तक चलता है, किन्तु मुमुक्ष की आध्यात्मिक उन्नति के लिए वह अत्यंत पोषक माना जाता है। अतः श्रद्धेय श्री स्वामी जी का आदेश हुआ कि यह पूजा श्री निरामयानन्द जी के द्वारा सम्पन्न हो और पूजा के कार्य में सहायता प्रदान करें नवागत साधक श्री गुरुजी। दीपावली आई और कालीपूजा प्रारम्भ हुई। वह पूजा पूरी रात चलती रही और हवन की समाप्ति तक पौ फटी।

सारगाछी में नवम्बर में अच्छी सर्दी रहा करती है। उस कड़ाके के जाड़े में रात भर सतत काम करते रहना आसान नहीं था। पूजा की उस रात्रि में श्री गुरुजी का निरन्तर ठण्डे पानी से ही संबंध था। उनका काम था थालियाँ, कमण्डलु, लोटे, पंचारती, नीराजन आदि पूजा के उपकरण तथा अन्य बरतन जैसे–जैसे खाली मिलते जाएँ, उनको माँजना, साफ करना और जरूरत पड़ने पर पूजा के लिए दे देना। यह काम नवागत साधक श्री गुरुजी ने तत्परता से किया। कहीं त्रुटि नही आने दी।

दिन निकलते ही श्रद्धेय स्वामी जी ने श्री निरामयानन्द जी से पूजा की विधि की सम्पन्नता और प्रसाद वितरण आदि के बारे में पूछकर फिर नवागत साधक श्री गुरुजी के काम के बारे में पूछताछ की। श्री निरामयानन्द जी ने कहा– अत्युत्तम! बहुत अच्छा! इतना स्वच्छ और व्यवस्थित काम मैं भी शायद ही कर पाता।

श्री निरामयानन्द जी के उस कथन पर श्रद्धेय श्री स्वामी जी प्रसन्न न होते तो ही आश्चर्य होता। उसी समय उन्होंने यह इच्छा प्रदर्शित की कि 'गोलवलकर' उनकी व्यक्तिगत सेवा में रहेंगे। इस प्रकार साधक श्री गुरुजी अपनी प्रवेश–परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उन्होंने अपने श्री गुरुदेव की सेवा प्रारम्भ की। श्रद्धेय श्री स्वामी जी के आहार–विहार, दवा–पानी, पथ्यापथ्य तथा अन्य सेवा–शुश्रुषा करते–करते

श्री गुरुजी को पता ही नहीं लगता था कि दिन कैसे बीत जाता है। श्री गुरुजी उच्च विद्या–विभूषित थे, अध्यापक थे और वकील भी थे, किन्तु श्रद्धेय श्री स्वामी जी के काम से उन्होंने कभी जी नहीं चुराया। अपनी उपाधियों और प्रतिष्ठा को अलग रखकर बिल्कुल मामूली आदमी की भाँति उन्होंने निष्ठा से विनम्रतापूर्वक श्रद्धेय श्री स्वामी जी की सेवा की। लम्बी यात्रा, स्थान परिवर्तन अथवा अन्य किसी कारण से पहले कुछ दिन श्री गुरुजी को सबेरे जाग उठने में देरी हुई तो श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने बहुत सौम्य शब्दों में कहा कि ऐसा निद्रालु मनुष्य मुझे बिल्कुल नहीं भाता। इसके बाद श्री गुरुजी ने फिर कभी उठने में विलम्ब नहीं किया। श्रद्धेय श्री स्वामी जी दिन में कई बाद सभाधिस्थ हो जाया करते थे। सेवा करते समय श्री गुरुजी को उन महान योगी की अनेक लोकोत्तर अवस्थाएँ समीप से देखने को मिलती तथा उनके मुख से समय–समय पर अभिव्यक्त होने वाले जीवन–तत्व–विषयक उद्गार भी सुनने को मिलते।


स्वामी अखण्डानंद जी

श्री गुरुजी की दिनचर्या थी सुबह चार बजे जगना और रात के लगभग बारह बजे सोना। सामान्य संकेत मिलने पर अथवा हल्की–सी भी आवाज सुनने पर 'जी आया' कहते हुए श्री गुरुजी अपने श्री गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित होते थे। इस क्रम में कुछ बदल होता तो दोपहर को भोजन के निमित्त। दोपहर को भोजन के उपरान्त श्री गुरुजी कभी लेटे नहीं थोड़ा–सा अवकाश पाते ही वे ग्रन्थशाला में चले जाते और आध्यात्मिक ग्रन्थों के अनुशीलन में मगन हो जाते। सारगाछी में रहते समय श्री गुरुजी ने अनेकानेक अंग्रेजी और हिन्दी ग्रन्थ पढ़ लिए थे।

दीक्षा-संस्कार

श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्द जी का स्वास्थ्य धीरे–धीरे गिरता जा रहा था। अतः श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने श्री अमिताभ महाराज को नागपुर से अपने पास बुला लिया। श्री अमिताभ जी श्रद्धेय श्री स्वामी जी के पट्ट शिष्य थे और उनके आने से श्रद्धेय श्री स्वामी जी का आनन्दित होना स्वाभाविक था। श्री अमिताभ महाराज की प्रेरणा से ही श्री गुरुजी पुनः परस्पर मिल गए।

सारगाछी आश्रम में आते ही श्री अमिताभ महाराज ने पूजा–अर्चना का कार्य स्वयं सँभाल लिया और शेष समय में वे श्रद्धेय श्री स्वामी जी की सेवा किया करते। आश्रम में रहते–रहते उनकी समझ में यह बात आ गई कि अभी तक श्री गुरुजी की दीक्षा नहीं हुई है। इस विषय में श्री गुरुजी सचिन्त नहीं थे, पर श्री अमिताभ महाराज को चिन्ता हो जाया करती थी। एक दिन श्रद्धेय श्री स्वामी जी की सेवा–चर्या करते समय श्री अमिताभ महाराज ने बात चलाई– माधवराव के माता–पिता वृद्ध हैं और उनके घर में अन्य कोई कमाने वाला तथा गृहस्थी को

सँभालने वाला भी नहीं है। अतः उनको दीक्षा यदि शीघ्र दे दी जाए तो अत्युत्तम हो और नागपुर जाकर वकालत करने की अनुमति भी उन्हें प्रदान करनी चाहिए।

इसके पहले भी दीक्षा दिये जाने की बात अन्यों द्वारा जब–जब चलाई गई, तब–तब श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने बार–बार यही कहा– 'अभी नहीं, अभी नहीं।' श्री अमिताभ महाराज की वह विनती सुनकर श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने अपने मन की बात कह डाली– श्री श्री ठाकुर जी की अनुमति मिलते ही 'गोवलकर' की दीक्षा होगी, किन्तु वह वकील ही होगा, यह कौन कह सकता है?

सारगाछी में वे अभिमन्त्रित दिवस आनन्द के साथ उदित होते और संतोष के साथ अस्त होते। उनकी ओर ध्यान देने के लिये श्री गुरुजी को अवकाश ही न था। किन्तु 12 जनवरी 1937 को एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। उस दिन शाम को अचानक ही श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने श्री गुरुजी की दीक्षा के विषय में अपना भाव श्री अमिताभ महाराज के समक्ष व्यक्त किया। उन्होंने कहा– श्री श्री ठाकुर जी के आदेश के अनुसार कल मकर संक्रमण के शुभ मुहूर्त पर 'गोवलकर' की दीक्षा विधि सम्पन्न होगी। उसे बताना कि कल अनशन करना होगा।

श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने श्री गुरुजी से भी बाद में कहा– गोवलकर! कल से तुम्हारा जीवन बदल जाएगा।

दूसरे दिन 13 जनवरी 1937 बुधवार को मकर–संक्रमण का शुभ दिवस था। उस दिन श्री गुरुदेव ने सबेरे ही दीक्षा विधि की तैयारी की और छोटे–से समारोह में वह संस्कार अपने हाथों सम्पन्न करवाया। मकर–संक्रमण के दिन श्री गुरुजी के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण संक्रमण हुआ। सारगाछी की विनोद–कुटी में श्री गुरुजी को दीक्षा दी गई थी। दीक्षा के उपरान्त उन्हें देव–दर्शन के लिए मंदिर भेजा गया। वह प्रभात की वेला थी और श्री अमिताभ महाराज मंदिर में पूजा कर रहे थे। श्री गुरुजी को मंदिर में आता हुआ देखकर उन्हें संतोष हुआ। श्री अमिताभ महाराज बताते हैं– उस समय श्री गुरुजी प्रशान्त महासागर के समान शान्त तथा गम्भीर दिखलाई दे रहे थे।

नागपुर से इतनी दूर सारगाछी आने में श्री गुरुजी का जो उद्देश्य था, वह इस मकर–संक्रांति के दिन सफल हुआ। वे कृतार्थ हुए। श्रद्धेय स्वामी जी श्री गुरुजी से अत्यधिक प्रसन्न थे। उस प्रसन्नता की ठीक–ठीक कल्पना लौकिक व्यक्ति को नहीं हो सकती। एक दिन उन्होंने अपने इस नूतन शिष्य को निकट बुला लिया और उसको जी भरकर आशीर्वाद दिया। उस समय उन्होंने कहा– "अब मैं श्री ठाकुरजी से प्रार्थना करता हूँ कि तेरी मनोकामना पूर्ण हो"– इतना कहकर श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने सचमुच ही हाथ जोड़ लिए। उस समय और तत्पश्चात् कितने ही समय तक श्री गुरुजी के आँसू भरे नयनों के अश्रु–बिन्दुओं का प्रवाह कपोलों को गीला करता रहा। अत्यधिक होने पर आनन्द भी अश्रुओं के रूप में बहने लगता है। उन्हें कौन रोक सकता है? और रोके भी क्यों? उस दिन के बाद से श्री गुरुजी की दृष्टि से कुछ मन्तव्य शेष नहीं रह गया था।

(श्रद्धेय स्वामी जी श्री गुरुजी को 'गोवलकर' से सम्बोधित करते थे।)

जिनके पदचिह्न बने सूरज ....

✍ राज बहादुर "विकल"

नगराज हिमालय की दृढ़ता, सागर की गहराई देखी,
गंगा की पावनता, मंत्रों की पावन सुघराई देखी;

कवि उन चरणों में बैठ चुका जिनके पद–चिह्न बने सूरज,
आलोक मिला इस धरती को हम सब अनादि के हैं वंशज;

माधव को देख लिया चरणों में बैठा हूँ वरदान मिले।
भारत माता के श्रेष्ठ पुत्र हमको युग के भगवान मिले।।

भारत अखण्ड, गरिमा असीम वे थे नौका के कर्णधार,
जन–मानस के प्रेरणा–स्रोत संगठन–शक्ति का बल अपार;

है माता भूमि, पुत्र हम सब माधव बन गए अथर्ववेद,
उनकी छाया में हिन्दू एक हो गए नहीं कुछ रहा भेद;

वे आए तो गौरव आया, भावना मिली उत्कर्ष मिला।
माधव बनकर उतरे तो चलता–फिरता भारतवर्ष मिला।।

सांस्कृतिक केतु फहराने को भारत के ग्राम–ग्राम घूमे,
जागरण ज्योति जन–जन को दे सबके अभ्यन्तर में घूमे;

बुझते दीपों को जला दिया वे भुक्त मुक्ति के दाता थे,
हम सब के गुरु थे मातु–पिता भारत के भाग्य विधाता थे;

हिन्दुत्व–प्राण, जीवनी शक्ति के निर्झर थे उद्दाम धाम।
सम्पूर्ण राष्ट्र के पथदर्शक ऋषि को सबके शत–शत प्रणाम।।

वे आए तो पथ से भटके हिन्दू को नूतन राह मिली,
गिरि मन्दर से जब मिले उन्हें गौरव–सागर की थाह मिली;

हिन्दू ने अपने ही जलते घर को उजियाला मान लिया,
जब रक्त रँगी तलवारों को कमलों की माला मान लिया;

वे थे भविष्यद्रष्टा हिन्दू को राह दिखाई है।
दैवी दर्पण पर जमी धूल युग–युग साफ कराई है।।

परकीय वृत्ति के मूलोच्छेदन को सब कुछ बलिदान किया,
था जड़ता का सघनान्धकार तो रश्मि–विशिख सन्धान किया;

सन्देश दिया बन शक्तिवान भारत महिमामण्डित कर दो,
ऐश्वर्य शिखर पर पहुँचा कर तप, त्याग शक्ति संचित कर दो

सम्पूर्ण राष्ट्र को कर अखण्ड महिमा स्वदेश की गाएँगे।
नगराज हिमालय के मस्तक पर भगवाध्वज फहराएँगे।।

सम्पूर्ण राष्ट्र होकर कृतज्ञ चरणों में शीश झुकाता है,
इतिहास तुम्हारा चित्र देखकर नतमस्तक हो जाता है;

हे ऋषि महान्, तुम तपःपूत माँ के सपूत तुमको प्रणाम,
हम सब पदचिह्नों पर चलकर पल भर न कभी लेंगे विराम;

पूरा भारत सन्नद्ध सबल हो आगे बढ़ता जाएगा।
पूरे भारत पर एक साथ केसरिया ध्वज फहराएगा।।

दीक्षा दिवस पर : श्री गुरुजी का स्वयं का मन्तव्य



सारगाछी रामकृष्ण मठ, श्री गुरु जी की दीक्षा भूमि। 13 जनवरी 1937, मकर संक्रांति के दिन इस पवित्र स्थल पर पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी ने गुरुजी को दीक्षा दी थी। (सारगाछी आश्रम का सामने का दृश्य)

13 जनवरी 1936, बुधवार, तिल संक्रांति

मेरे लिए परमोत्तम दिन, स्वर्णिम शब्दों में लिखे जानेवाला दिन। क्योंकि युगों–युगों के, लक्षलक्ष अगणित जन्मों का संचित सौभाग्य इस दिवस मुझपर मुस्कराया और गुरुदेव द्वारा एक दिव्य आनंद मुझे कृपापूर्वक प्रदत्त हुआ। उस दिन के अनुभव वस्तुतः अत्यंत पवित्र हैं। उस पवित्रता की अभिव्यक्ति में शब्द असमर्थ हैं। मैं उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर सकता। गुरुदेव की दृष्टि, उनका प्रेम, उनका समग्र प्रभाव, जिस प्रकार उन्होंने अपनी कृपा से मुझे दिव्य आनंद प्रदान किया– मैं सोचता हूँ, मैं आशा करता हूँ, मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा। मेरे अंग–प्रत्यंग काँप रहे थे। मैंने स्वयं को परिवर्तित अनुभव किया। मैं वह नहीं हूँ, जो कुछ क्षण पूर्व था।

24 जनवरी 1937

अत्यंत आनंदपूर्ण दिनों में से और एक दिन। उन्होंने शाम को मुझसे पूछा– 'क्या पका अनानास है?' सकारात्मक उत्तर मिलने पर उन्होंने मुझे उसे काटने के संबंध में निर्देश दिए। इसके बाद उन्होंने इसी संबंध में हाथों से संकेत दिए। फिर एकाएक बोले– 'तुम्हारा सर्व कल्याण हो। तुमको आत्मदर्शन हो, यही मेरी गुरु महाराज जी से प्रार्थना है। जो कुछ मुझमें अच्छा हो, सो मैं सब तुमको देता हूँ। मेरा भला तुमको मिले, तुम्हारी सब बुराई मुझे मिल जाए। अपनी बुराई तुम मुझे दे दो, मैं सुख नहीं चाहता, दुःख ही चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि भगवान मुझे दुःख दे, जिसमें कि तेरा विस्मरण कभी न हो। सुख क्या है, वह अच्छा नहीं। देखो हमारे लिए प्रत्यक्ष भगवान ने

कैसे कष्ट सहे हैं। श्रीकृष्ण का जन्म हुआ और माता का एक बार भी दूध न पी सके कि उन्हें माता को छोड़ दूर ग्वालों के यहाँ जाकर रहना पड़ा। वहीं वे बड़े हुए। किंतु वहाँ भी उन्हें कुछ सुख नहीं मिला। सदैव असुरों से विपत्ति प्राप्त होती ही गई। उन्होंने जो सहा, उसके सामने हम लोगों का दुःख है ही क्या? इसलिए मैं दुःख ही चाहता हूँ। अतः तुम्हारी सब बुराई तुम मुझे दो और मेरा सब भला तुम्हारा हो। जाओ। यही मेरा तुम्हें आशीर्वाद है। आज की संध्या का स्मरण रखना! जाओ, तुम्हारा सब भला हो! इससे और अच्छा आशीर्वाद हो ही क्या सकता है?'

इसके बाद थकान के कारण उन्होंने कहा कि वे इससे अधिक बोल नहीं सकते। मैं चला आया। वस्तुतः इससे अधिक अच्छा आशीर्वाद क्या हो सकता है? मेरा सारा शरीर रोमांचित हो गया। मैं केवल दुःखी इसलिए हूँ कि शब्द मुझे विफल कर रहे हैं और मैं स्वयं को बिल्कुल व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। मैं उनके प्रति केवल श्रद्धानत हो सका। ओ प्रभु! तू मुझे, अपने इस तुच्छदास को, अपनी उदारतापूर्वक कृपा प्रदान करता है, प्रभु, तू मुझे वह क्षमता प्रदान करता है, जिससे मैं तेरी उदारता ग्रहण कर सकूँ, क्योंकि मैं निर्बल हूँ और मेरा मानसिक पात्र रिसता है। मुझे शक्ति, विरक्ति भक्ति दे, जिससे मैं तेरी कृपा, जो तूने मेरी अयोग्यता के बाद भी बड़े वात्सल्य और दयापूर्वक प्रदान की है– के योग्य बन सकूँ। ओ प्रभु, मैं तेरा सेवक बनने का पात्र बन सकूँ।

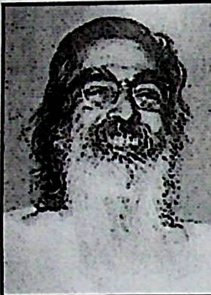
(उपरोक्त संस्मरण स्वयं श्री गुरुजी के हस्तलिखित जर्जर–सदृश कागजों में उस समय मिले, जब 'श्री गुरुजी समग्र' के लिए सामग्री–संकलन के लिए प्रयत्न चल रहे थे। –सं.)

अध्यात्म और संगठन

नागपुर में डाक्टरजी के सान्निध्य में अत्यन्त प्रेरणादायक राष्ट्र समर्पित व्यक्तित्व के दर्शन कर श्री गुरुजी के जीवन के एकदम नए मोड़ का शुभारम्भ हो गया। इस विषय पर किसी आप्तव्यक्ति के द्वारा पूछे जाने पर श्री गुरुजी ने कहा :-

"मेरा रुझान अध्यात्म के समान ही राष्ट्र संगठन के कार्य की ओर भी प्रारम्भ से है। वह कार्य संघ में रहकर अधिक परिणामकारिता से मैं कर सकूँगा ऐसा मेरा विश्वास है। इसलिए मैंने संघ कार्य में ही स्वयं को समर्पित कर दिया। मुझे लगता है स्वामी विवेकानंद के तत्वज्ञान और कार्यपद्धति से मेरा यह आचरण सर्वथा सुसंगत है।"

विजय ही विजय*


मा. स. गोलवलकर

आजकल लोग मेरे स्वास्थ्य को लेकर बहुत चिंता करते हुए दिखाई देते हैं। ठाणे की बैठक में जब पहले दिन मैंने यह कहा कि संघकार्य बाकी सब लोगों को करना है, मेरा तो उसमें अब कोई साथ नहीं, तब अपने कई प्रमुख कार्यकर्ताओं ने मेरे पास आकर कहा कि ऐसा नहीं कहना चाहिए था। मैंने कहा, 'सच बात कह दी।' उसके बाद से फिर इस शरीर की क्षमता बहुत ही तीव्र गति से कम हो गई है, जिसकी मुझे भी अपेक्षा नहीं थी। अभी भी मैं आशा रखता हूँ कि यह जो शारीरिक अवस्था निर्माण हुई है, वह तात्कालिक सिद्ध होगी और फिर से शरीर कुछ काम कर सकेगा। अभी तो मैंने अपने साथियों और डा. थत्ते से कहा है कि सब संघ शिक्षा वर्गों में जाने का कार्यक्रम बना डालो, बाकी आगे जो होगा, सो देखा जाएगा। कार्यक्रम तो बनाएँ, जाना हो सका तो ठीक ही है, नहीं हुआ तो बोल देंगे कि भाई, नहीं हो सका। ऐसा लगता है कि कार्यक्रम बना तो उसे ठीक तरह से निभा लूँगा। देखें, क्या होता है।

अब हम लोगों को एक बात सोचनी है। वह याने यह आदमी रहा या न रहा, इससे संगठन का कोई बड़ा नुकसान नहीं होने वाला। वैसे, अपने देश का इतिहास रहा है कि संस्थाएँ कुछ दिनों तक अच्छी चलती हैं, फिर आपस में कुछ मतभेद उत्पन्न हो जाता है। मतभेद तो कम ही रहते हैं, व्यक्तिभेद ही रहते हैं। कांग्रेस सहित बाकी की संस्थाएँ टूटी हैं, केवल एक जनसंघ ही ऐसा है जो टूटा नहीं। परंतु अब लोगों को इस बात से बड़ी खुशी हो रही है कि इनके एक पुराने कार्यकर्ता को दल से निकालने की बारी आई है। इससे ऐसे लोगों के मन में यह आशा उत्पन्न हुई है। उनका सोचना है कि संघ से संबंधित कार्यकर्ता–वर्ग जनसंघ में है और उसमें विच्छेद आया है, वह धीरे–धीरे संघ में भी आ जाएगा। इसी आशा का तार पकड़कर समाचार–पत्रों में ऐसे समाचार बना–बना कर प्रकाशित भी किए गए हैं कि सरसंघचालक के पद को लेकर काफी कशमकश चल रही है। अतः संघ में भी कभी ना कभी विच्छेद होगा।

हम संगठन के लिए

पर हम लोग तो संगठन करने के लिए निकले हैं, विच्छेद के लिए नहीं। हम कभी विच्छेद नहीं होने देंगे। यह ठीक है कि कभी–कभी कार्यकर्ताओं का छोटी–छोटी बातों पर आपस में मतभेद हो जाता है और आपस में नाराज हो

*(सन् 1973 में अ. भा. प्रतिनिधि सभा के समय श्री गुरुजी का स्वास्थ्य बहुत ही चिंताजनक था। इस कारण वे बैठक में पूर्ण समय उपस्थित नहीं रह सके थे। फिर भी बैठक के अंतिम दिन अर्थात् 25 मार्च को उन्होंने समारोप बौद्धिक दिया। बोलने में बहुत कष्ट हो रहा था। एक–दो वाक्य बोलने के बाद उनकी साँस फूल जाती थी, खाँसी भी कष्ट देती थी। फिर भी अपनी स्वाभाविक पद्धति के अनुसार उन्होंने 40 मिनट तक विचार व्यक्त किए। अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा में उनका यह भाषण, अंतिम भाषण रहा)

जाते हैं। अभी तो ठीक है कि नाराज भी होते हैं तो एक–दूसरे को मना लेते हैं, परंतु बार–बार ऐसा प्रसंग आया तो मनाना कठिन हो जाएगा। ऐसे प्रसंग बार–बार नहीं आएँ, ऐसा विचार हमें करना चाहिए। मुझे तो समझ में नहीं आता कि छोटी–छोटी बातें इस प्रकार लग क्यों जाती हैं? वास्तव में ऐसा नहीं होने देना चाहिए। आपस में थोड़ा भी मनोमालिन्य नहीं आने देना चाहिए। प्रत्येक बात में संघ का ही विचार रहना चाहिए। किसी बात पर अपने साथियों द्वारा लिया हुआ कोई निर्णय अपने सामने आया, तो मन में यह विचार कदापि नहीं लाना चाहिए कि वह निर्णय कैसे लिया गया। एक बार निर्णय हो जाने पर उसका समर्थन करने की तैयारी होनी चाहिए। इस प्रकार छोटी–छोटी बातों पर मतभेद टालना चाहिए। हमें संपूर्ण समाज को संगठित कर सहजीवन की भावना को समाजव्यापी करना है। इस बड़े कार्य का दायित्व हम पर है। इसलिए कैसी भी परिस्थिति क्यों न आ खड़ी हो, अपने अंदर किसी प्रकार का मनोमालिन्य नहीं आने देना चाहिए।

विभिन्न क्षेत्रों में संगठन

संगठन की इस स्थिति का हमें अब और भी विचार करना पड़ेगा क्योंकि विभिन्न कार्यक्षेत्रों, जैसे– विद्यार्थी, राजनीति, मजदूर आदि में अपने कार्यकर्ता काम कर रहे हैं। इन कार्यों की रचना, संविधान, नियम, व्यवहार आदि भिन्न प्रकार के हैं। फिर भी अपना स्वयंसेवक वहाँ संगठन की धारणा लेकर जाता है और उसे वहाँ प्रस्थापित करने का प्रयत्न करता है। हम सभी को इस बात का विचार करना चाहिए कि इस प्रकार की प्रत्यक्ष चेष्टा वहाँ होती है या नहीं।

ऐसा करते समय लोग भले ही कहते हों कि यहाँ पर भी ये लोग अपने संघ की तानाशाही चलाने का प्रयास कर रहे हैं, तो हम लोग उसपर ध्यान न दें। जो लोग ऐसा कहते हैं, उन्हें यह मालूम नहीं है कि तानाशाही क्या चीज है। अपने यहाँ के कार्य में तानाशाही का लवलेश भी नहीं है। यहाँ तो अधिक से अधिक मात्रा में सब लोगों की सामूहिक इच्छा से कार्य होता है। इसे तानाशाही समझकर लोग आरोप करते हों, तो उन्हें वैसा करने दो। उसकी कोई चिंता न करते हुए राष्ट्र–संगठन का सूत्र अपने भिन्न–भिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रत्यक्ष लाने के लिये सभी को प्रयत्नशील रहना चाहिए। जो भिन्न–भिन्न कार्य चलते हैं, उनकी कुछ मर्यादाएँ रहती हैं, विवशताएँ रहती हैं। उन्हें मान भी लिया जाए, तब भी हमें अपना ध्येय छोड़ने का कोई कारण नहीं है।

हमारा उद्देश्य एक है

राष्ट्र की चिरंतन शक्ति निर्माण करने का अपना ध्येय लोगों को समझाने से भले ही एकदम समझ में न आए, परंतु काम करते–करते अपना जैसे–जैसे एक–एक आदमी से संबंध आता जाएगा, वैसे–वैसे उनको समझाते रहना चाहिए। ये जो भिन्न–भिन्न काम हैं, उन सबका उद्दिष्ट एक ही है कि यह देश, समाज व राष्ट्र अपना है तथा इसका श्रेष्ठ जीवन निर्माण करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के ये सब व्यवहार हो रहे हैं। राष्ट्र ही हमारा उपास्य है। उसी की सेवा में सब कार्य हैं। अपने सामने यह राष्ट्र न हो, तो बाकी के व्यवहारों से भला हमें क्या करना हैं?

हिंदूराष्ट्र संकल्पना स्वीकार होगी

कुछ लोग कहेंगे कि यदि हमने अपना हिंदूराष्ट्र का विचार कहा, तो सभी लोग उसे

नहीं मानेंगे। परंतु इस सत्य की उद्घोषणा को कुछ लोग आज मानें न मानें, उससे कुछ बिगड़ता नहीं है। हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसके संबंध में अपने मन का पूर्ण विश्वास हो, तो आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करने पर सच बात को लोग मानने लग जाएँगे। हम सभी का अनुभव है और मुझे भी ऐसा विश्वास है कि लोग मानते हैं।

यदि कोई कहे कि मैं इस विश्वास को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ, तो यह उसकी दुर्बलता है। अपने–अपने क्षेत्र में विशेषतः अपना सुस्पष्ट भाव अधिकाधिक मात्रा में लोगों को समझाएँ, तो नए–नए लोग अपने साथ आकर खड़े होंगे। परंतु यदि हमने अपने में दुर्बलता रखकर अपने ध्येय के संबंध में लचर भाषा में बोलना प्रारंभ कर दिया तो सब समाप्त हो जाएगा तथा यह ध्येय को पोषक बनने के स्थान पर एक और संकट उत्पन्न करनेवाली बात सिद्ध होगी।

चारित्र्य का आदर्श

अपने यहाँ चारित्र्य का आदर्श रखा गया है। हम लोगों ने सार्वजनिक रूप से एक राष्ट्रीय चारित्र्य खड़ा करने का प्रयत्न किया है। उसमें कुछ मात्रा में यश भी मिला है। डा. मुंजे स्मारक समिति द्वारा निधि–संग्रहार्थ जनता को आह्वान करने का निर्णय किया गया। उस आवेदन पर किसके हस्ताक्षर हों, इस पर विचार हुआ। मुझ जैसे व्यक्ति, जिसके पास अपना कोई पैसा नहीं है, के हस्ताक्षर रहने से कौन पैसा देनेवाला है। तब विभिन्न प्रांतों में सात नाम चुने गए, जिनमें चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जी (राजाजी) का नाम भी था। उनसे मिलकर उनकी अनुमति प्राप्त करने के लिए मैंने चेन्नै शाखा के संघचालक जी को पत्र भेजकर सूचित किया। वे जब राजाजी से मिले तो उन्होंने कहा, 'निधि–संग्रहार्थ निकाले जानेवाले किसी भी आवेदन पर अपने हस्ताक्षर न देनें का मेरा नियम है, क्योंकि इसका बहुत कटु अनुभव है।' तब संघचालक जी ने उन्हें मेरा पत्र दिया। उसे पढ़कर उन्होंने कहा, 'उन पर मेरा भरोसा है कि वे जिस काम के लिये पैसा इकट्ठा करेंगे उसी पर खर्च करेंगे', और उन्होंने उस अपील पर हस्ताक्षर कर दिए। यह एक उदाहरण है कि लोग किस प्रकार हम पर विश्वास करते हैं। अतः हमें भिन्न–भिन्न प्रकार के जो कार्य करने हैं, उनमें अपना व्यवहार शुद्ध रखना चाहिए।

विजय ही विजय

साथ ही हमें ध्यान रखना चाहिए कि शाखा के बिना हम भिन्न–भिन्न कार्य नहीं कर पाएँगे। जहाँ अपनी शाखा अच्छी प्रकार से चलती है, वहाँ पर कोई भी कार्य हाथ में लिया, तो उसे निश्चयपूर्वक सफल कर सकते हैं। अतः संघशाखा के कार्यक्रम, उसकी आचार–पद्धति, स्वयंसेवकों का व्यवहार, स्वयंसेवकों का स्वभाव तथा उनका गुणोत्कर्ष आदि बातों की ओर हम ध्यान दें और उनका प्रसार तथा दृढ़ीकरण करने का एकाग्रचित्त से प्रयत्न करें। इतना करेंगे तो सब क्षेत्रों में विजय प्राप्त करेंगे। यह कार्य जितने अंतःकरणपूर्वक और सुदृढ़ता से चलेगा, उतनी अपने लिए सर्वदूर विजय ही विजय है, ऐसा मैं पूर्ण विश्वास से कहता हूँ।

मानव-प्रतिष्ठा संकट में

जहाँ तक देश की परिस्थिति का प्रश्न है, हम देखते हैं कि दिन–प्रतिदिन तानाशाही की

ओर बढ़ रही है। लोग बोलते हैं कि रूसवादी तानाशाही आ रही है। कोई भी तानाशाही हो, वह अनिष्टकारी है। प्रचार करने से मनुष्य प्रचार का गुलाम कैसे बन जाता है, यह प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। आजकल सरकारीकरण का प्रचार हो रहा है। उसी की हवा चल रही है और सभी आवश्यक चीजों के सरकारीकरण की माँग की जा रही है। नागपुर के मिर्च–व्यापारियों ने भी प्रस्ताव पारित कर मिर्च का संपूर्ण व्यापार सरकारी हाथों में लेने की माँग की है। अभी एक बड़े कांग्रेसी नेता ने कहा कि केवल अनाज का सरकारीकरण करने से काम नहीं होगा, सभी चीजों का सरकारीकरण करना चाहिए। लोगों को लगता है कि सरकारीकरण सब रोगों की रामबाण दवा है। साथ ही, वे यह भी कहते हैं कि अपनी सरकार ऐसी है कि वह सोना उठाएगी तो वह भी मिट्टी बन जाएगा। नवंबर के अंत में मैं इंदौर में था। वहाँ के समाचार–पत्रों में यह समाचार पढ़ने को मिला कि सरकारी गोदाम के गेहूँ में मिट्टी के बड़े–बड़े ढेले मिले, जिनमें गेंहू के कुछ कण चिपके हुए थे। सरकारीकरण की यह स्थिति है, फिर भी इस प्रकार की हवा है, लोगों का उसकी ओर झुकाव है। आज देश में ऐसी स्थिति निर्माण की जा रही है, जिसके अंतर्गत कुछ मुट्ठीभर सत्ताधारी हों और शेष संपूर्ण समाज उनका गुलाम बनकर रहे। मानव की प्रतिष्ठा का जो भाव रहना चाहिए था, वह अब कहाँ रहा है? वह तो गुलाम, याने पालतू कुत्ता हुआ जा रहा है। उसके अंदर कोई तेजस्विता नहीं रही। मार पड़ी तो भी रोटी के लिए लार टपकाएगा।

इस स्थिति में मनुष्य तथा राष्ट्र की अस्मिता और चारित्र्य जागृत करने तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा को सब प्रकार से अक्षुण्ण रखने में समर्थ समाज की संगठित शक्ति खड़ी करने का बहुत बड़ा दायित्व हमारी ओर आया है। यह अपने कार्य के विस्तार और उसके दृढ़ीकरण से ही संभव है। इसके लिए एक–एक व्यक्ति को अपने संपर्क में लाकर कार्य के साथ जोड़ना होगा।

मनुष्य कितना लाचार होता है, यह मैंने अनुभव किया है। सन् 1947 के बाद सिंध से आए हुए निर्वासितों की बस्ती में मैं गया था। वे लोग मुझसे मिलने आए और कहने लगे– 'हमारे निवास पर छत डलवाने के लिए कहने लगे– 'हमें बताया गया था कि कांग्रेस अधिवेशन के लिए मंगवाई गई टीन की चद्दरें हमारे निवास पर छत डालने के लिए हमे दी जाएँगी, परंतु बाद में कोई ध्यान नहीं दिया गया। हमें न देते हुए उन्हें बाजार में बेच कर मुनाफा कमाया गया। मेरे द्वारा यह पूछे जाने पर कि मेरे पास आने से क्या होगा? उन्होंने कहा कि उनकी इच्छा है कि विरोधी दलों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाए। मेरे द्वारा यह पूछे जाने पर कि चुनाव में उन लोगों ने किस पक्ष को मत दिया था, वे कुछ नहीं बोले। मैं समझ गया। उनसे कहा– 'मत दूसरों को दो और आवाज विरोधी दल उठाए, यह कैसे चलेगा? वे आपकी आवाज उठाएँ इसके लिए आप लोगों को उन्हें समर्थन देना होगा।' मनुष्य की आज ऐसी स्थिति हो गई है। स्वार्थ के लिए वे लांगुलचालन करते हैं। समाज की इस स्थिति को बदलने के लिए समाज को आत्मविश्वासपूर्ण बनाना होगा। समाज, संगठित सामर्थ्य के बल पर ही प्रभुसत्ताधारी हो सकता है। यह दायित्व पूर्ण करने के लिए अपनी

शाखाओं के विस्तार और दृढ़ीकरण तथा व्यक्ति–व्यक्ति के गुणसंवर्धन की ओर ध्यान देना होगा।

विघटनकारी शक्तियाँ

आज देश में 'विघटनकारी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं और विदेशी शक्तियाँ उनसे लाभ उठाने के लिए सिद्ध हैं। असम में हुए भाषाई झगड़ों के पीछे विदेशी शक्तियों का हाथ रहा है। हरिज़नों पर होनेवाले अत्याचारों के संबंध में जो भड़काऊ समाचार छपते हैं, उनके पीछे भी विदेशी समाचार–वितरण–संस्थाओं का हाथ दिखाई देता है। विदेशी शक्तियाँ अच्छी तरह से जानती हैं कि हिंदू समाज को तोड़ने से ही यहाँ पर उनका प्रभुत्व रह सकता है। हिंदू–मुसलमान के झगड़ों का वृत्त देते समय जाति के नामों का उल्लेख करने पर रोक है, परंतु सवर्ण हिंदू विरुद्ध हरिजन, ब्राह्मण विरुद्ध अब्राह्मण विवाद के भड़कीले समाचार दिए जाते हैं। मुझे संदेह है कि इस प्रकार समाज की एकता को आघात पहुँचानेवाले विक्षोभक समाचारों के प्रचार के पीछे विदेशी शक्तियों की चाल काम कर रही है और भारत में उन विदेशी ताकतों के प्रभाव के कारण ही अभी तक इस दिशा में कोई रोकथाम नहीं की गई है।

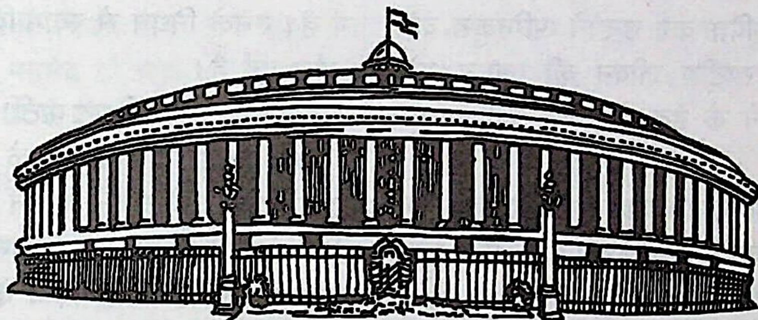
हमारा दायित्व

ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में समाज के एकीकरण तथा राष्ट्रीयत्व के जागरण का कार्य पूर्णतया करने में हम सफल नहीं हुए हैं। हम जितनी मात्रा में उसे पूर्ण करेंगे और सबके सामने अपने कार्य का एक घनीभूत आदर्श रूप खड़ा करेंगे, उतनी ही मात्रा में यह विदेशी हस्तक्षेप दूर होकर देश में एकात्मता तथा परस्पर स्नेह का वायुमंडल देखने को मिलेगा। अपने इस दायित्व को पहचानकर हमें कार्य का सब प्रकार से विचार करना चाहिए और विस्तार के लिए अपने सब कार्यकर्ताओं को चारों ओर के कार्यों में जुट जाना चाहिए। यहाँ देशभर के प्रतिनिधि आए हुए हैं, वे अपने–अपने क्षेत्र में इस दृष्टि से पूर्ण चेष्टा करेंगे। मैं इस समय इतना ही कहता हूँ। अगली बार बोलने के लिए भगवान समय देते हैं या नहीं, कौन जाने?

श्रद्धेय गाँधी जी की हत्या के पश्चात् देश भर के कांग्रेसी, समाजवादी और कम्युनिस्ट लोगों द्वारा संघ के कार्यालयों और कार्यकर्ताओं के घरों पर आगजनी व लूटपाट का सिलसिला चल पड़ा। सरकारी यंत्रणा के द्वारा भी लगातार संघ पर विष-वमन जारी था। गुरुजी के घर पर भी उपद्रवी भीड़ ने धावा बोल दिया। इन आक्रमणखोरों को ठीक-ठीक सबक सिखाने की शक्ति स्वयंसेवकों में नहीं थी ऐसी बात नहीं, परन्तु देश की ऐसी विषम घड़ी में राष्ट्रीय सामंजस्य को टिकाने हेतु संघ की ओर से 'कुछ भी हो पर शांत रहो' ऐसी सूचना देश भर के स्वयंसेवकों को दी गई थी। श्री गुरुजी ने भी उस परिस्थिति में अपेक्षित शांत संयमित एवम् सौहार्द-पूर्ण व्यवहार के लिए एक विस्तृत वक्तव्य जारी किया था। अपने घर पर चढ़ आई आक्रमणकारी भीड़ को तितर-बितर करने के लिये सुसज्ज दण्डधारी स्वयंसेवकों को शांति से वापस जाने के लिए भी श्री गुरुजी ने आज्ञा दे दी और अपने नित्य के संध्यावंदन के लिए अंदर चले गए। उन्होंने पास के कार्यकर्ताओं को कहा- ''जिस समाज की सेवा के लिये मैं कटिबद्ध हूँ अपने कारण उसके रक्त की एक भी बूँद बहाने का अवसर मैं नही दूँगा।''

संसद में श्रद्धांजलि

(संसद का सदस्य न होते हुए भी जिन कुछ ही लोगों को संसद में श्रद्धांजलि दी गई, उनमें से एक थे श्री गुरुजी गोलवलकर)



राज्यसभा के सभापति श्री गोपालस्वरूप पाठक

श्री एम. एस. गोलवलकर जी की मृत्यु की सूचना सदन में प्राप्त हुई है। वे श्रेष्ठ संगठन–क्षमतावाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र–सेवा में लगाया। वे गहरी धार्मिकतावाले व्यक्ति थे और हिंदू–संस्कृति और सभ्यता में सुधार के लिए उन्होंने लवलीन होकर कार्य किया। हमारे राष्ट्रजीवन में आदरपूर्ण स्थान उन्होंने प्राप्त किया। उनके निधन से एक सम्माननीय व्यक्ति हमने खोया है।

लोकसभा अध्यक्ष श्री गुरुदयालसिंह ढिल्लों :

'गुरुजी' नाम से विख्यात श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर की मृत्यु की दुःखद सूचना सदन में दी जा रही है। 67 वर्ष की आयु में वे 5 जून 1973 को नागपुर में स्वर्गवासी हुए। श्री गोलवलकर श्रेष्ठ संगठन–क्षमतावाले नेता थे। अपने व्यक्तित्व, विद्वत्ता और अपने उद्देश्य के प्रति अथाह निष्ठा के बल पर वे जनजीवन में विचारकों के बीच प्रमुख रूप से जाने–माने जाते थे। यद्यपि कई लोग ऐसे हो सकते हैं, जो उनकी विचारधारा और राजनीतिक दर्शन से मतभिन्नता रखते हों, फिर भी यह सत्य है कि उन्होंने अपने तरीके से देश की सेवा में अथक प्रयत्न किए। उनके निधन से देश के सार्वजनिक क्षेत्र में गहरी क्षति हुई है।

प्रधानमंत्री और सदन की नेता श्रीमती गाँधी :

जो सदन के सदस्य नहीं थे, ऐसे एक अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री गोलवलकर जी नहीं रहे। वे विद्वान थे और शक्तिशाली आस्थावाले व्यक्ति थे। जैसा आपने कहा, हममें से कई उनकी मूलगामी विचारधारा से सहमत नहीं थे, परंतु उन्होंने अपने अनुयायियों पर गहरा प्रभाव निर्माण किया था।

श्री ईरा सेझियन (द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम) :

श्री गोलवलकरजी की मृत्यु के संबंध में अध्यक्ष महोदय आपके और सदन की नेता के द्वारा व्यक्त मनोभावों के साथ में भी सहभागी हूँ।

जगन्नाथराव जोशी (जनसंघ) :

पूजनीय गुरुजी के महानिर्वाण को हम भारतीय परंपरा में पले हुए एक तपस्वी और

कर्मयोगी के जीवन की समाप्ति कहेंगे। उनके विचार से कई लोग सहमत थे और कई लोग असहमत थे, किंतु राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में लगातार जीवन की आखिरी साँस तक अपनी समिधा को समर्पित कर उन्होंने अग्निकुंड को जलाया। इस राष्ट्रीय जीवन की ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने के हेतु ही उनके जीवन की परिपूर्ति हुई।

दिवंगत महानुभाव का निर्वाण देश में एक अपूरणीय क्षति का निर्माण करता है। उसको पूरा करना ही हमारा दायित्व है।

श्री श्यामनंदन मिश्र (संगठन कांग्रेस) :

एक विशेष श्रेणी में हमारे गुरु गोलवलकर आते है। वे कई मामलों में एक विशेष श्रेणी के व्यक्ति थे। यह कहना जरूरी नहीं है कि हमारे उनके साथ सैद्धांतिक और दूसरे मतभेद थे। यह वक्त इस बात का तकाजा करता हो, मैं यह भी नहीं मानता। उसका इजहार कहीं और किया जाएगा और पहले भी करते रहे हैं। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि वे बड़े मनीषी थे, चिंतक थे, तपोपूत व्यक्ति थे, भारतीय वाङ्मय के बड़े ज्ञाता थे और मुझे ऐसा लगता है कि वे बड़े कर्मयोगी और आत्मज्ञानी थे। तभी कैन्सर के रोगी होते हुए भी जिंदगी की आखिरी साँस तक उन्होंने अपने कर्तव्य को निभाया। इसमें संदेह नहीं कि उनमें अद्‌भुत संगठन–शक्ति थी। उनका चरित्र और उनका व्यक्तित्व प्रेरणा का स्रोत था, तभी तो लाखों–लाख कार्यकर्ताओं को उन्होंने प्रेरित किया, इतनी बड़ी संस्था को आगे बढ़ाया।

श्री पी.के.देव (स्वतंत्र पार्टी) :

श्री गुरुजी के नाम से विख्यात श्री मा.स. गोलवलकर हृदय से राष्ट्रवादी थे। कई मामलों में हम उनसे सहमत भले ही न हुए हों, परंतु हम निश्चित ही स्वीकार करते है कि उनका जीवन त्यागपूर्ण और समर्पित था। वे महान संगठक थे और देश में उनका विशाल अनुयायी वर्ग है। उनके निधन से स्वाभाविक ही रिक्तता निर्माण हुई है।

श्री समर गुहा (सोशलिस्ट पार्टी) :

श्री गुरुजी गोलवलकर के संबंध में यही कहना होगा कि वे केवल विद्वान ही थे. यह बात नहीं, क्योंकि ऐसे प्रायः सभी विद्वानों जैसा उन्होंने एकांत जीवन नहीं बिताया। वे देशभक्त थे और उन्होंने राष्ट्रीय कार्यों में देशभक्ति, समर्पण और सेवा के भाव देश के हजारों तरुणों में विगत चालीस वर्षों तक संचारित किए।

डा. कर्णीसिंह (निर्दलीय) :

श्री गुरुजी महान राष्ट्रीय नेता थे। मैं मानता हूँ कि वे उन कुछ महान व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने देश को आत्मत्याग का मार्गदर्शन दिया। मैं अनुभव करता हूँ कि वे उन महान व्यक्तियों में से थे, जो देश का संचालन कठिन तथा संकटपूर्ण स्थिति में करने का कार्य अधूरा छोड़ हमारे बीच से उस समय चले गए, जब देश उनकी सेवाओं का उपयोग कर सकता था।

श्री पुरुषोत्तम गणेश मावलंकर (निर्दलीय) :

श्री गुरुजी के नाम से विख्यात श्री एम.एस. गोलवलकर की असंदिग्ध देशभक्ति सभी को ज्ञात है। उन्होंने नागरिकों में और विशेषतः तरुणों में अनुशासन तथा राष्ट्रीय चरित्र निर्माण किया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह कार्य उन्होंने अपने 'सादा जीवन, उच्च विचार' के निजी आदर्श को सबके सामने रखकर किया। उन्होंने सर्वत्यागी संन्यासी का जीवन बिताया।

श्रद्धा सुमन

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज :

श्री गुरुजी के निधन से राष्ट्र व हिंदू समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। श्री गुरुजी से धार्मिक विषयों में मतभेद हो सकते हैं, किंतु उनकी उत्कट राष्ट्रभक्ति तथा समर्पित भाव से राष्ट्र व समाज सेवा के क्षेत्र में किए गए कार्य सदैव प्रेरणास्पद रहेंगे।

जैन संत आचार्यश्री तुलसी :

श्री गोलवलकर जी में सक्रियता, संगठन शक्ति और भारतीय संस्कृति का अनुराग था। वे समालोचक और गुणग्राही– दोनों एक साथ थे। वे राष्ट्रीय चरित्र पर बहुत बल देते थे, इसीलिए उनसे हमारा संपर्क और अणुव्रत आंदोलन के प्रति उनका आकर्षण हुआ।

गोरक्षपीठाधीश्वर श्री महंत अवैद्यनाथ जी :

श्री गुरुजी के निधन से हिंदू धर्म तथा हिंदू जाति की अपूरणीय क्षति हुई है।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी :

उन्होंने राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति के उन्नयन में जो महान योगदान दिया है, उसके लिए समस्त राष्ट्र उनका चिर ऋणी रहेगा।

आचार्य विनोबा भावे :

मेरे ह्वदय में उनके लिए बड़ा आदर रहा है। उनका दृष्टिकोण व्यापक उदार और राष्ट्रीय था, वे हर चीज राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करते थे। उनका अध्यात्म में अटूट विश्वास था और सभी घर्मों के लिए उनके ह्वदय में आदर का भाव था। उनमें संकीर्णता लेश–मात्र भी नहीं थी, वे हमेशा उच्च राष्ट्रीय विचारों से कार्य करते थे।

लालकृष्ण अडवाणी, अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ :

गुरुजी आधुनिक युग के स्वामी विवेकानंद थे, जो महान व विशाल भारत के निर्माण क़े लिए दृढ़ संकल्प व निष्ठा के साथ प्रयत्नशील थे।

अटल बिहारी वाजपेयी :

श्री गुरुजी के महान व्यक्तित्व में समर्थ स्वामी रामदास की भक्ति तथा शिवाजी महाराज की शक्ति का अपूर्व संगम था। उनमें रामकृष्ण की तपस्या और विवेकानंद के तेज का समन्वय था।

डा. शंकरदयाल शर्मा, अध्यक्ष, कांग्रेस :

श्री गुरुजी का राष्ट्रीय जीवन में सम्मानपूर्ण स्थान था और वे अपने विश्वासों के प्रति दृढ़ थे।

रक्षामंत्री जगजीवन राम :

भारत ने सरसंघचालक श्री गोलवलकर की मृत्यु से एक ऐसा नेता खो दिया है, जो संगठन की योग्यता रखता था तथा जिसमें राष्ट्रीय हित को लेकर कष्ट उठाने की क्षमता थी।

एस.एम.जोशी, सोशलिस्ट नेता :

श्री गोलवलकर के निधन से एक तपस्वी की जीवन ज्योति बुझ गई है। मुझे यह विश्वास है कि श्री गोलवलकर की संगठनात्मक शक्ति का उपयोग राष्ट्रीय प्रगति के लिए किया जाएगा।

ओम प्रकाश त्यागी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा :

श्री गुरुजी आर्यसमाज के सामाजिक उत्थान के कार्य के प्रबल समर्थक थे। आर्यसमाज द्वारा संचालित ईसाई मिशनरी विरोधी गतिविधियों को उनकी पूरी सहानुभूति प्राप्त थी। उनके निधन से आर्य जगत् की भारी क्षति हुई है।

बाल ठाकरे, शिवसेना :

किसी जहाज के नायक की भाँति श्री गोलवलकर जी संघ को अनेक संकटों में से कुशलतापूर्वक आगे बढ़ाते ही गए।

कामरेड तकी रहीम, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी :

यद्यपि मैंने श्री गुरुजी के कभी दर्शन नहीं किए, तथापि देश के उज्ज्वल भविष्य के उनके आदर्श में विश्वास रखने वालों में गुरुजी की प्रेरणाशक्ति को मैंने अनुभव किया है।

दादासाहब आप्टे, महामंत्री, विश्व हिंदू परिषद् :

श्री गुरुजी के निधन से हिंदू समाज ने एक महान दार्शनिक और पथ–प्रदर्शक खो दिया।

जैनेंद्र कुमार जैन :

श्री गोलवलकर भारत के प्रभावशाली तथा प्रतिभावान सुपुत्रों में से थे। उनका व्यक्तित्व तथा वक्तव्य अनूठा था। उनके निधन से भारत एक रत्न से वंचित हो गया।

प्रो. विष्णुकांत शास्त्री :

श्री गुरुजी भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनका जीवन समस्त राष्ट्र को समर्पित था। जीवन के अंतिम क्षणों तक वे राष्ट्र को आलोकित करते रहे।

नमन पुनरपि नमन

✍ डा. देवेन्द्र आर्य

कोटि–कोटि हृदयों की
भावनाओं के प्रतीक,
गहन अन्धकार की छाती को चीर
सूरज को कन्धों पर उठाए
अतीत की देहरी पर
वर्तमान को रोप
भविष्य के नन्दनकानन की कल्पना में मग्न
जिसकी एक–एक गन्ध लहर
न जाने कितने गुलाबों में
माँ भारती के चरणों में
समर्पण का भाव जगाती है
अनगढ़ माटी में सुगबुगाते
चैतन्य प्राणों को
नव–सृजन के द्वार तक
बरबस खींच लाती है।
हमें पता है
एक–एक दीप को
आँधियों से बचाए रखने में
तुम न जाने कितनी बार
हिमालय–सा तने थे,
नन्हीं चिनगारी को
धधकता ज्वालामुखी बनाने में
तुम न जाने कितनी बार
स्वयं ही दिनकर–से दहे थे
हमें पता है
एक दीप से
सूरज तक का सफर नापना
कितना कठिन होता है
अनगढ़ मूर्ति को
देवत्व के शिखरों तक ले जाना
कितनी साधना, कितना धैर्य
और कितना विश्वास माँगता है?
जिसकी एक–एक बूँद में
महाकुम्भों का ज्वार भरा है
धरती से लेकर आकाश तक
नए जीवन का शाश्वत राग गुंजित
हमें पता है
गरल की दाहकता से
विश्व को बचाए रखने में तुम
हर बार शिव बने थे
और देवों को ही नहीं
सुख की प्रतीक्षा में खड़े
पंक्ति के आखिरी दुःख को भी तुमने
अमृत–सुख से सिंचित किया
जिसने नल–नील के शिल्पी हाथों में
पत्थरों को तैराने का चमत्कार भर
सागर–बन्धन को साकार कर दिया था
और जिसने–अर्जुन के गाण्डीव में
महाभारत का इतिहास लिख
सुई की नोंक पर
पूरा इन्द्रप्रस्थ राज्य धर दिया था।
हमें पता है
किसी भी सागर ने
किसी भी युग में
केवल प्रार्थना करने पर
मार्ग नहीं दिया है
सकोप राम ने तब भी
शस्त्र की वन्दना कर
शर–सन्धान का पौरुष किया था
और आज भी–
काल की प्रत्यंचा साधे
कर्मक्षेत्र में तत्पर है,

तुम्हारा स्वरूप बनकर कृष्ण
कालियदह में
फणिधर के एक–एक फन पर
प्रलय नृत्य कर
विष को निर्विष करने का
पराक्रम कर रहा है।
आज हमें तुममें
सारा विश्व रूपायित होते दिखता है
राम का पौरुष
गीता का कर्म
और पांचजन्य का उद्घोष
दयानन्द का संकल्प
विवेकानन्द की दिव्य समदृष्टि
तुभ में संचरित होते,
एक नया रूप ग्रहण करते दीख रहा है
इस शताब्दी वर्ष में
एक बार फिर से
वसन्त की उत्फुल्लता बन
फूलों में समा जाओ
ऊर्जा बन शिराओं में झंकृत हो जाओ
नव प्रेरणा बन प्राणो में उतर जाओ
नव युग में
नव प्रकाश का सूरज बन
माँ भारती के आँचल में
गौरव–गरिमा का स्नेह बन निखर जाओ
सम्पूर्ण विश्व तुम्हें
कोटि–कोटि भावांजलि अर्पित करता है
यह विश्व
यह धरती
यह गगन
ये पंच तत्व
ये पंच प्राण
तुम्हें नमन करते हैं, नमन करते हैं
नमन करते हैं।

अभिनन्दन है

– रामनारायण त्रिपाठी 'पर्यटक'

अभिनन्दन है, अभिनन्दन है।
युग ऋषि माधव पद–वन्दन है।।

संगठन–मन्त्र के सूत्रधार,
हे संघ शक्ति के यशगाता!
हे अनुशासन के ध्वजवाही!
संस्कृति–सूरज के उद्गाता।

हे केशव पथ के अनुगामी,
बढ़ रहा आपका स्पन्दन है।
अभिनन्दन है, अभिनन्दन है।।

जो राष्ट्रोन्नति में बाधक थे,
वे सारे बन्धन तोड़ चले।
अगड़ों–पिछड़ों का भेद मिटा,
मानव से मानव जोड़ चले।

हे सन्त! आपके तपबल से,
मिट रहा जगत् का क्रन्दन है।
अभिनन्दन है, अभिनन्दन है।।

उत्तर को दक्षिण से जोड़ा,
पूरब पश्चिम को एक किया।
हिन्दू दर्शन व्याख्याता बन,
शाश्वत विचार नवनीत दिया।

श्रम–शोणित से सींचा जिसको,
वह राष्ट्र बन रहा नन्दन है।
अभिनन्दन है, अभिनन्दन है।।

है पतित न हिन्दू हो सकता,
ऐसा पावन उद्घोष किया।
है कोई यहाँ अछूत नहीं,
सबसे मिलकर परितोष दिया।

जग ने माथे से लगा लिया,
बन गई चरण–रज चन्दन है।
अभिनन्दन है, अभिनन्दन है।।

शत नमन माधव चरण में

शत नमन माधव चरण में,
शत नमन माधव चरण में।।ध्रु।।

आपकी पीयूष वाणी, शब्द को भी धन्य करती,
आपकी आत्मीयता थी, युगल नयनों से बरसती,
और वह निश्छल हँसी जो, गूँज उठती थी गगन में।।१।।

शत नमन माधव.....

ज्ञान में तो आप ऋषिवर, दीखते थे आद्यशंकर,
और भोला भाव शिशु सा, खेलता मुख पर निरन्तर,
दीन दुःखियों के लिए थी, द्रवित करुणा-धार मन में।।२।।

शत नमन माधव.....

दुःख-सुख, निंदा-प्रंशसा, आपको सब एक ही थे,
दिव्य गीता-ज्ञान से युत, आप तो स्थितप्रज्ञ ही थे,
भरत भू के पुत्र उत्तम, आप थे युग-पुरुष जन्मे।।३।।

शत नमन माधव.....

मेरु गिरि सा मन अडिग था, आपने पाया महात्मन्,
त्याग कैसा आपका वह, तेज साहस शील पावन,
मात्र दर्शन भस्म करदे, घोर षड्रिपु एक क्षण में ।।४।।

शत नमन माधव.....

सिंधु सा गम्भीर मानस, थाह कब पाई किसी ने,
आ गया सम्पर्क में जो, धन्यता पायी उसी ने,
आप योगेश्वर नए थे, छल भरे कुरुक्षेत्र रण में।।५।।

शत नमन माधव.....

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

(गीता 18/78)

